दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2498 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 28 अंक नं० 5

गुरु-स्तुति

(राग सारंग)

श्रीमुनि राजत समता संग। कायोत्सर्ग समायत अंग॥टेक॥
करतैं नहिं कुछ कारज तातैं, आलंबित भुज कीन अभंग।
गमन काज कछुहु नहिं तातैं, गति तजि छाके निज रससंग॥
लोचनतैं लखिवौ कछु नाहीं, तातैं नासा दृग अचलंग।
मुनिवे जोग रह्यो कछु नाहीं, तातैं प्राप्त इकंत सुचंग॥
तहँ मध्याह्नमाहिं निज ऊपर, आयो उग्र प्रताप पतंग।
कैधौं ज्ञान पवनबल प्रजुलित, ध्यानानलसौं उछलि फुलिंग॥
चित्त निराकुल अतुल उठत जहँ, परमानंद पियूषतरंग।
'भागचंद' ऐसे श्रीगुरुपद, वंदत मिलत स्वपद उत्तंग॥श्री०॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अक्टूबर : 1972] वार्षिक मूल्य 4) रुपये (329) एक अंक 35 पैसा [भाद्रपद : 2498

आनंद-मंगल आज हमारे....

परम कृपालु पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की अनन्य भक्त प्रशममूर्ति पूज्य भगवती बहिनश्री चंपाबहिन की 'वन' वर्षों की पूर्णाहुति तथा 59 वें वर्ष की जन्म-जयंती का मंगल-उत्सव सुवर्णपुरी में अति आनंदोल्लासपूर्व मनाया गया था।

माननीय अध्यक्ष महोदय श्री नवनीतलालभाई जवेरी तथा माननीय श्री रामजीभाई दोशी द्वारा किया गया पूज्य बहिनश्री की जन्मजयंती मनाने का निर्णय उनकी सूचना से पूज्य गुरुदेव के समक्ष रखा गया। अभीष्ट उत्सव मनाने का प्रस्ताव आने से पूज्य स्वामीजी ने अति प्रसन्नतापूर्वक अपनी सम्मति प्रगट की और कहा कि —'चंपाबहिन तो धर्मरत्न हैं, उन्हें बाहर आना बिलकुल नहीं रुचता, परंतु उनके प्रति धर्मप्रेम रखनेवालों को तो ढिंढोरा पीटकर उन्हें प्रसिद्धि में लाने का भाव आयेगा ही!'

पूज्य गुरुदेव की प्रसन्नता विद्युतवेग से मुमुक्षु समाज में फैल गई। सब आनंदित हुए। समय कम था, इसलिये जल्दी संक्षिप्त तथापि सुंदर निमंत्रण-पत्रिका छपवाकर प्रेषित की गई। सुवर्णपुरी का वातावरण मंगल-महोत्सव की प्रतीक्षा से गूँजने लगा।

सुवर्णपुरी के मुमुक्षु समाज ने जन्म-जयंती का यह उत्सव तीन दिन तक मनाने का निर्णय किया। इस शुभोत्सव की मंगल कामना के निमित्त तीन दिन के लिये पंचपरमेष्ठी-मंडल-विधान पूजा रचाई गई थी।

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा इस मंगल-उत्सव के प्रारंभ का पावन दिवस था। प्रातःकाल तीनों दिन आश्रम के गगन में शहनाई के स्वर गूँजते थे। इस शुभ प्रसंग को सुशोभित करने के लिये श्री जिनमंदिर, स्वाध्यायमंदिर तथा ब्रह्मचर्याश्रम को रंग-बिरंगे विद्युत प्रकाश से सजाया गया था। आनंद-प्रेरक विद्युत-स्वस्तिक तथा रंग-बिरंगी विद्युत-शलाकाओं से सुशोभित जिनमंदिर की अद्‌भुत शोभा देखकर मुमुक्षुओं के हृदय पुलकित होते थे। आश्रम की दीवार पर लगाया गया '५९' का आकर्षक विद्युत-अंक सबका ध्यान आकर्षित करता था। *[—शेषांश टाइटिल पृष्ठ 3 पर]*

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

अक्टूबर : 1972 ☆ भाद्रपद : वीर नि० सं० 2498, वर्ष 28 वाँ ☆ अंक : 5

ज्ञानी और अज्ञानी के अनुभव में महान अंतर

शरीर की कोई भी चेष्टा, वह जीव की क्रिया नहीं है। उस क्रिया को जो जीव की मानते हैं, वे शरीरादि अजीव को ही जीव माननेवाले हैं। ऐसे जड़-चेतन के विवेकरहित अज्ञानी जीव मृतक-कलेवर शरीर में ही मुग्ध हो रहे हैं; उन्हें चैतन्य-अमृतस्वरूप अपने आत्मा की खबर नहीं है; शरीर से रहित अपना कोई अस्तित्व ही उन्हें भासित नहीं होता। ज्ञानी को तो स्पष्ट भेदज्ञान है कि जड़ शरीर के अस्तित्व में मैं नहीं हूँ; मैं तो अपने चैतन्य-अस्तित्व में हूँ; मेरी चैतन्यसत्ता में जड़ की सत्ता नहीं है; आत्मा का कोई भी गुण या पर्याय अचेतन शरीर में नहीं हैं। इसप्रकार जड़ और चेतन के भिन्न अस्तित्व का भेदज्ञन करके ज्ञानी जीव अपने को शरीरादि समस्त अचेतन से अत्यंत भिन्न परम चैतन्यस्वरूप अनुभव करते हैं।

अनुभूति में शांतरस का समुद्र उल्लसित हुआ है

[श्रावण कृष्णा सप्तमी]

आत्मा की अनुभूति होते ही शांतरस के महा समुद्र का स्वयं अपने में साक्षात् अनुभव किया है। अहा! शांति का ऐसा विशाल समुद्र मैं हूँ... ज्ञान की गंभीरता से भरपूर चैतन्य चमत्कारयुक्त मेरी वस्तु है, उसकी ओर उन्मुख हुआ ज्ञान अतीन्द्रिय होकर प्रत्यक्ष हुआ है... वह अतीन्द्रिय ज्ञान अतीन्द्रिय शांतिसहित प्रगट हुआ है... जिसप्रकार विशाल लहरों से समुद्र उल्लसित होता है, उसीप्रकार धर्मी के अनुभव में शांति का विशाल समुद्र उल्लसित हुआ है... ज्ञान का समुद्र भगवान आत्मा शांतरस में निमग्न होकर अपनी परिणति में उल्लसित हो रहा है।—ऐसा दशा हुई तब आत्मा को जाना कहा जाता है, और ऐसे आत्मा को जाने बिना सब निष्फल है—उसमें चैतन्य की शांति का वेदन नहीं है।

अहा, इतना विशाल ज्ञानसमुद्र! अंतर में प्रत्यक्ष विद्यमान है; परंतु पर्याय में राग और विकल्प के साथ एकत्वबुद्धिरूप चादर बीच में आ जाने से जीव को वह ज्ञानसमुद्र दृष्टिगोचर नहीं होता। अब श्रीगुरु के उपदेशानुसार आत्म-स्वभावोन्मुख होकर उसका स्वीकार करते ही वह अज्ञानरूपी चादर दूर हो गई, और पर्याय में शांतरस से उल्लसित अपना ज्ञानसमुद्र मैंने साक्षात् देखा... जिसप्रकार समुद्र रत्नों से भरा होने के कारण रत्नाकर कहा जाता है, उसीप्रकार ज्ञानसमुद्र ऐसा मेरा भगवान आत्मा चैतन्यरत्नाकर शांति आदि अनंत गुणों का समुद्र है, वह अनंत गुणों की निर्मलता से उल्लसित अनंत—अपार स्वरूपसंपदावान अपना आत्मा मेरी स्वानुभूति में आया है, और हे जगत के जीवो! तुम भी इस आत्मा को प्रत्यक्ष अनुभवरूप करो...

—ऐसे आत्मा के अनुभव-ज्ञान बिना अन्य किसी संयोग द्वारा या बाह्य जानकारी द्वारा कुछ भी अधिकता प्रतीत हो तो वह जीव अज्ञान में-भ्रम में रुक गया है। अरे! ज्ञान का महासमुद्र, उसके समक्ष बाह्य ज्ञान का क्या मूल्य? अहा, चैतन्य की महानता बतलाने के लिये समुद्र की उपमा दी... और उसे भगवान कहा। वास्तव में समुद्र तो सीमित है... स्वयंभूरमण

समुद्र भी मर्यादित (असंख्य योजन का) है, जबकि यह भगवान ज्ञानसमुद्र तो अनंत-अमर्यादित सामर्थ्यवान है। समुद्र की उपमा देकर चैतन्य की अनंत गंभीरता समझायी है। अरे, ऐसे शांतरस से उल्लसित चैतन्य ज्ञानसमुद्र का अस्वीकार करके, शास्त्रज्ञान के द्वारा अपनी महानता प्रतीत हो या उसमें संतोष माने—तो वह महान विभ्रम है। यहाँ धर्मी हुआ आत्मा कहता है कि उस विभ्रम का तो अब व्यय हो गया है, और महान ज्ञानप्रकाश उदित हुआ है... ज्ञान होते ही संपूर्ण चैतन्यसमुद्र अनंत-गुण की निर्मल तरंगों द्वारा उल्लसित हो रहा है। इस चैतन्यसमुद्र की उछलती तरंगों में अज्ञान और विभ्रम तो धुल गये, दुःख दूर हो गया और परम आनंदसहित शांतरस की लहरों से चैतन्य भगवान-ज्ञानसमुद्र उछल रहा है। अहो! ऐसे शांतरस की महिमा की क्या बात करें! हे जगत के जीवो! तुम भी अंतर्मुख स्व-संवेदन द्वारा अपने आत्मा में ऐसे शांतरस का अनुभव करो। सर्वांग असंख्य प्रदेशों में आत्मा शांतरस से निमग्न हुआ है, उसकी महिमा अपार-अपार है! महा आनंद से भरपूर आत्मा का अतीन्द्रिय स्वभाव, वह वचन और विकल्प से पार है। इंद्रियज्ञान भी उसे नहीं पकड़ सकता, अतीन्द्रिय आनंदस्वभाव को साक्षात् करनेवाला ज्ञान भी अतीन्द्रिय हुआ है... साधक को अनंत गुणों में राग से भिन्न परिणमन हो रहा है... अनंत गुणों की निर्मलपर्यायरूप भगवान आत्मा परिणमन कर रहा है। प्रथम रागादि परभावों में स्वयं डूबकर निमग्न हुआ था, अब चिदानंदस्वभावोन्मुख होने पर, राग से पृथक् होकर अनंत गुणों की निर्मल पर्यायरूप स्वयं उन्मग्न हुआ—उल्लसित होकर ऊपर आया... असंख्य प्रदेश अनंत गुण के आनंदरस में निमग्न होकर खिल उठे हैं। सम्यग्दर्शन होने पर मुझमें ऐसी दशा हुई है—ऐसा धर्मी साक्षात् जानता है। अनुभव में आत्मा में शांतरस का ऐसा समुद्र उल्लसित हुआ... मानो समस्त लोक शांतरस से भर गया हो! अनुभूति में अशांति का कहीं नाम-निशान तक नहीं है। ऐसे शांतरस का समुद्र लोकपर्यंत उल्लसित हो रहा है।

धर्मात्मा की ज्ञानदशा में सहज परम आनंदरूपी अमृत का पूर आया है, संपूर्ण आत्मा स्वयं स्वभाव से परमानंदरूप से उल्लसित हुआ है, उसमें अब राग-द्वेष कैसे? अशांति कैसी? आत्मा में अंतरोन्मुख जो पर्याय महा आनंद में मग्न हुई, वह तो परमानंद के मार्ग पर चली, वह स्वयं आनंदरूप है और मोक्ष के परम आनंद को साधती है।—ऐसी परिणतिरूप परिणमित हुआ जीव तीर्थंकरों के मार्ग में शोभायमान हो रहा है।

उस धर्मात्मा को आत्मा की निकटता एक क्षण भी नहीं छूटती, और विकल्पों के साथ एक क्षण भी एकता नहीं होती। जो आत्माभिमुखी भाव है, वह तो रागरहित ही है, आनंदरस से परिपूर्ण है। आत्मा स्वयं सहज आनंदस्वरूप है, इसलिये अंतर्मुख होकर आत्मा की निकटता में आनंद का वेदन होता है। मेरी चेतनापरिणति में मेरा आत्मा ही समीप है और अन्य समस्त परभाव दूर हैं—भिन्न हैं। मेरा आत्मा मेरी परिणति से किंचित् भी दूर नहीं है।—आत्मा के स्वरूप का ऐसा संचेतन धर्मी को निरंतर होता है।

अहा, ज्ञान-दर्शन से पूर्ण, शांतरस से भरपूर ऐसा मैं; मेरे स्वसंवेदन में राग या विकल्प कैसा? ज्ञानानंदमय मेरे स्वभाव के अतिरिक्त अन्य कोई परमाणुमात्र मुझे अपनेरूप भासित नहीं होता। चैतन्य की जिस शांति के समक्ष तीर्थंकर नामकर्म का विकल्प भी अग्नि की भट्टी समान प्रतीत होता है, ऐसे शांतरसमय महा सुंदर वस्तु मुझे अपने में प्रगट हुई है, और हे जीवो! तुममें भी ऐसी सुंदर शांतरस से भरपूर वस्तु विद्यमान है, तो तुम भी अपने शांतरस के समुद्र में जाओ न! उसमें तुम्हें अपूर्व शांति की प्राप्ति होगी... और अनादि का दुःख-अशांति दूर हो जायेगी। आज ही तुम ऐसे वीतरागी शांतरस का अपने में अनुभव करो!—इसप्रकार स्वानुभव में प्रगट हुए शांतरस का स्वाद लेने के लिये जगत के जीवों को भी आमंत्रण देते हैं।

—००—

उपशमरस बरसा है मेरे आत्म में,
अनंत गुणों से उछला चैतन्यदेव है।
'कहान' गुरु बरसाते अमृत मेघ हैं,
आओ... आओ! करें शांतरस-पान हम॥

[गुजराती आत्मधर्म अंक नं. 346, पृष्ठ 8 से 10 तक का हिन्दी अनुवाद]

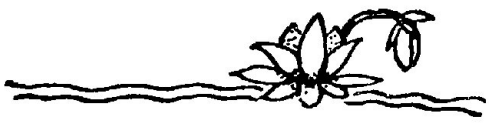

उन गुणगंभीर आचार्यभगवंतों को हम पूजते हैं

[श्रावण कृष्णा 12, नियमसार गाथा : 73 से 75 के प्रवचन से]

अहो, मोक्ष के साधक मुनिवरों की अंतरदशा कैसी अद्‌भुत होती है ! और उनकी दशा पहिचाननेवाले धर्मात्मा को उनके प्रति कितना महान भक्तिभाव होता है ! उसकी झलक इस प्रवचन में दिखायी देगी।

अंतर्मुख चिदानंदस्वभाव को पकड़कर, राग से पृथक् होकर शुद्धोपयोग द्वारा ज्ञान का आचरण करनेवाले वे आचार्य हैं... वे परिपूर्ण चिदानंद भगवान आत्मा को जानने में-श्रद्धा करने में-अनुभव करने में कुशल हैं... गुणों से वे गंभीर हैं, चैतन्य के अनंत गुणों का भंडार उनके खुल गया है। ऐसे मोक्षमार्गी गुण-गंभीर आचार्य भगवान धर्मी जीवों द्वारा वंद्य हैं... उन्हें हम वंदन करते हैं।

चैतन्यतत्त्व के अनंत स्वभावगुण हैं, उस स्वभाव की ओर उन्मुख होने पर एक साथ अनंत गुण के रस का वेदन हो जाता है। ऐसे अनंत गुण-संपन्न आत्मा का स्वीकार करने पर ज्ञान का सामर्थ्य अनंतगुना विकसित हो जाता है, वह ज्ञान अतीन्द्रिय होकर स्वभाव का प्रत्यक्ष वेदन करता है।

जिसका आदर करना हो, उसके सन्मुख होकर ही उसका आदर होता है; उससे विमुख रहकर आदर नहीं होता। राग की ओर उन्मुख होकर चैतन्यभगवान का आदर नहीं हो सकता। घर पर कोई विशेष अतिथि पधारे हों, तब उनके सन्मुख जाकर आदर-सत्कार करते हैं कि—आओ ! पधारो ! परंतु यदि अतिथि की ओर न देखें और दूसरी ओर देखें तो अतिथि का अनादर होता है। तो जिसका हमें आदर करना हो, उसके सन्मुख होना चाहिये। यह आत्मा 'हरि' अर्थात् चिदानंदस्वभाव के सामर्थ्य द्वारा विभाव को हरनेवाला 'सिंह', सर्व पदार्थों में श्रेष्ठ ऐसा 'इंद्र', ऐसा महान भगवान, उसे अपने आँगन में बुलाकर सत्कार करने की यह बात

है। श्रद्धा-ज्ञान को अंतरस्वभाव की ओर उन्मुख करके अर्थात् परोन्मुख भावों से भिन्न होकर चैतन्य भगवान का आदर-सत्कार और स्वीकार होता है। राग या पर के सन्मुख रहने से चैतन्यप्रभु का आदर-स्वीकार नहीं हो सकता। संत तो अंतर्मुख होकर सर्वज्ञपद को ग्रहण कर रहे हैं। सिद्धपद को साध रहे हैं... चैतन्यगृह में सिद्धों का सत्कार किया है और रागादि परभावों को दूर किया है। अहा! अनंत स्वभाव की साधना करनेवाले संत-मुनिवरों की क्या बात! संपूर्ण स्वभाव को स्वीकार करनेवाली पर्याय भी अनंतगुण के रस से उल्लसित होती हुई आनंदरूप हो गई है। अहा, अनंतगुण से गंभीर ऐसे चैतन्यतत्त्व को साधनेवाले जीव की दशा भी महागंभीर होती है...

ऐसी दशा द्वारा आत्मा को साधनेवाले साधु परमेष्ठी भगवंतों में आचार्य भगवंत कैसे हैं? उनकी यह बात है। शास्त्रकार श्री कुन्दकुन्दस्वामी स्वयं भी ऐसे महान आचार्य हैं, वे कहते हैं कि अहो! आचार्य भगवंत ज्ञानादि पंचाचार में पूर्ण हैं, धीर और गुण-गंभीर हैं, पंचेन्द्रियरूपी हाथी को वश करने में दक्ष हैं। चाहे जैसा घोर उपसर्ग आये, तथापि अपने स्वरूप की साधना से चलायमान नहीं होते—ऐसे अत्यंत धीर और गुणगंभीर हैं। रत्नत्रय में ज्ञान-दर्शन-चारित्र कहे हैं, परंतु ऐसे तो अनंत गुणों द्वारा जो गंभीर हैं, स्वभाव के अनुभव में अनंत-गुणों का कार्य एक साथ हो रहा है—ऐसे गंभीर गुणवाले आचार्य भगवंत वंदनीय हैं। उन आचार्य भगवंतों को भक्तिक्रिया में कुशल ऐसे हम भवदुःखों को छेदने के लिये पूजते हैं।

धर्मात्मा की परिणति अंतर में चैतन्य की ओर झुक गई है, उसमें वह कुशल है, इसलिये विकल्प से भिन्न ज्ञानरूप होकर ही वह परिणमित हो रही है, ऐसी ज्ञानदशा तो विकल्प से भिन्न ही वर्तती है, वहाँ बीच में पंचपरमेष्ठी भगवंतों के प्रति वंदन-नमस्कार आदि का भाव आता है। अंतर में तो चैतन्य के स्वभाव में से अनंत गुणों के अतीन्द्रिय आनंद का निर्मल झरना झरता है और पर को नमस्कार आदि का शुभभाव, वह व्यवहार आचार में जाता है। उसमें भी कहते हैं कि भक्ति-क्रिया में कुशलता द्वारा हम पूजते हैं अर्थात् निश्चय-व्यवहार दोनों की पहिचानपूर्वक हम उन आचार्य भगवंतों को पूजते हैं। मात्र राग में स्थित रहकर नहीं पूजते, अंतर में राग से भिन्न चैतन्यस्वभाव की सन्मुखतापूर्वक उन वीतरागी आचार्य भगवंतों को हम पूजते हैं।—इसप्रकार निश्चय-व्यवहारसहित भक्तिक्रिया में कुशलता द्वारा हम आचार्य भगवंतों को वंदन करते हैं, पूजते हैं।

आचार्य, उपाध्याय या साधु—वे सब परम चिद्रूप आत्मतत्त्व में अंतर्मुख होकर निश्चय-रत्नत्रय में कुशल हैं, उन्हें यहाँ व्यवहारचारित्र में भक्ति से वंदन किया है। वे ज्ञानादि की शुद्ध परिणतिरूप परिणमन कर रहे हैं। ज्ञानी ऐसे चैतन्यपरिणमन को पहिचानकर उन्हें नमस्कार करता है, वह सच्ची भक्ति है; परंतु पर को नमस्कार में परलक्ष होने से शुभराग है, उस शुभराग से चैतन्यपरिणमन भिन्न है—ऐसा वह ज्ञानी जानता है। अहा, संत चैतन्य की आराधना में शूरवीर हैं। चैतन्यस्वभाव के श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धरत्नत्रय, उन रत्नों को साधने में शूरवीर आचार्य-उपाध्याय-साधु हैं।

जगत में जड़ रत्न तो अति अल्प हैं, परंतु सम्यक्त्वादि गुणरत्न तो प्रत्येक जीव के पास अनंत हैं। उन अनंत चैतन्यरत्नों का भंडार आत्मा है, उसके सन्मुख होने से पर्याय में भी सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान तक के रत्न प्रगट होते हैं। स्वामीजी प्रमोद से कहते हैं कि हे रत्नधर! तू अनंत चैतन्यरत्नों को धारण करनेवाला रत्नधर हैं, तू दीन नहीं है। अनंत मुक्तिरत्नों, आनंदमय रत्नों का तू भंडार है... अरे हीरा! चैतन्य के अनंत हीरों को तू भंडार है, उनके सन्मुख होते ही तुझे रत्नत्रय और मोक्ष की प्राप्ति होगी।

अहा, आत्मा की एक स्वसंवेदन ज्ञानपर्याय में अनंत सिद्धों, लाखों अरिहंतों एवं करोड़ों साधुओं के स्वरूप का निर्णय समा जाता है कि जैसा ज्ञान-आनंद का वेदन मुझे स्व-संवेदन में हुआ है, वैसा ही ज्ञान-आनंद का वेदन वे सब पंचपरमेष्ठी भगवंत कर रहे हैं। देखों तो सही, साधक के स्वसंवेदनज्ञान का महान सामर्थ्य! ऐसी शक्ति शुभ विकल्प में नहीं है। स्वसंवेदनज्ञान में विकल्प का समावेश नहीं है। विकल्प से भिन्न कार्य करनेवाला ज्ञान ही पंचपरमेष्ठी आदि के स्वरूप की सच्ची महिमा जानता है। और वह ज्ञान अंतर्मुख होकर अपने अनंत आनंदधाम में प्रवृत्ति करता है; आनंदमय श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र द्वारा वह मोक्ष को साधता है।—ऐसे संतों के अतीन्द्रिय आनंदमय चैतन्यपरिणमन को पहिचानकर हम भक्ति से उनकी वंदना करते हैं।

अहा, वे संत तो चैतन्य के निर्विकल्प शांतरस का वेदन करनेवाले हैं, वहाँ उन्हें बाह्य विषयों की कांक्षा क्यों हो? वे परम निष्कांक्ष हैं। अंतर में परम सुखरस के पान से जो स्वयं तृप्त हुए हैं, वे अब दु:खजनक विषयों की क्यों इच्छा करेंगे?—ऐसे परम नि:कांक्ष भाववाले जैन

साधु होते हैं। स्वभाव के परम सुख का स्वाद लिये बिना विषयों की इच्छा नहीं मिटती। पुण्यराग की इच्छा, वह भी विषयों की ही इच्छा है। रागरहित अतीन्द्रिय चैतन्यसुख का स्वाद लिये बिना राग की या विषयों की इच्छा नहीं मिटती; और ऐसे जीव को साधुपना कहाँ से होगा? साधु तो चैतन्यसुख के अमृत से तृप्त-तृप्त होने से परम निष्कांक्ष हैं। परमात्मतत्त्व की भावना से अर्थात् उसमें एकाग्रता से ही परम निष्कांक्ष-भावना होती है, और ऐसी दशावाले रत्नत्रययुक्त उपाध्यायादि साधु भगवंतों को हम भक्ति से बारंबार वंदन करते हैं।

मुनि भगवंत अपनी अंतर्मुख रत्नत्रय-परिणति में वर्तते हैं, विकल्परूप बाह्य परिणति में वे तन्मय नहीं होते; उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि भी अपने निर्मल चैतन्यभाव में वर्तता है, रागादि में नहीं वर्तता। रागपरिणति और चेतना परिणति दोनों बिल्कुल भिन्न कार्य करती हैं।

अहा, मोक्ष के साधक साधुओं की दशा तो परमात्मतत्त्व की भावना में परिणमित हो गई है, एकदम अंतर्मुख ढल गई है, इसलिये वे निर्मोह और निर्ग्रंथ हैं। चैतन्य के आनंद का अनुभव करके जो विषयों से सदा विरक्त हैं और आत्मा में सदा अनुरक्त हैं, ऐसे चार आराधना के आराधक साधु मोक्ष के सन्मुख और भव से विमुख हैं; ऐसे साधुओं की पवित्र चैतन्यदशा हमें वंद्य है, हम उन्हें वंदन करते हैं।

अपूर्व महिमावंत चैतन्यवस्तु

जिसको अंतर में आत्मकल्याण की अभिलाषा जागृत हुई हो, सम्यग्दर्शन प्रगट करने की इच्छा उत्पन्न हुई हो, वह जीव चैतन्य को प्राप्त करने के लिये एकांत में अंतर्मंथन करता है कि अहो! चैतन्यवस्तु की महिमा अपूर्व है; उसकी निर्विकल्प प्रतीति को किसी राग या निमित्त का अवलंबन नहीं है; शुभभाव अनंतबार किये, तथापि चैतन्यवस्तु लक्ष में नहीं आयी, तो वह राग से रहित चैतन्यवस्तु कोई अंतर की अपूर्व वस्तु है, उसकी प्रतीति भी अपूर्व अंतर्मुख प्रयत्न से होती है।—इसप्रकार चैतन्यवस्तु को ग्रहण करने का अंतर्मुख उद्यम, वह सम्यग्दर्शन का उपाय है।

[गुजराती आत्मधर्म अंक नं. 346, पृष्ठ 23 सक 26 तक का हिन्दी अनुवाद]

चैतन्यस्वभावरूप जीव रागादि से अत्यंत भिन्न है, भेदज्ञान द्वारा हम उसका साक्षात् अनुभव करते हैं

ज्ञानी को स्वसंवेदन के बल से चैतन्यस्वभाव सबसे अत्यंत भिन्न दिखायी देता है। अज्ञानी को अपना चैतन्यस्वभाव कहीं दिखायी नहीं देता, उसे तो संयोग और परभाव ही दिखायी देते हैं, इसलिये वह तो उन्हें ही आत्मा मानता है, परंतु वह वास्तव में आत्मा नहीं है। आत्मा तो उन सबसे भिन्न चैतन्यस्वभावी है—यह बात यहाँ समझाते हैं, और उसका अनुभव करने को कहते हैं।

धर्मात्मा ने श्रीगुरु का उपदेश प्राप्त करके, अपने आत्मा को स्वसंवेदनप्रत्यक्षरूप शुद्ध, एक, ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण और अन्य समस्त भावों से भिन्न अनुभव किया; उसका अद्भुत शांतरसमय वर्णन 38वीं गाथा में किया, और दूसरे जीवों को ऐसे शांतरसमय आत्मा का अनुभव करने की प्रेरणा दी।

अब, ऐसे आत्मा का जिसे अनुभव नहीं है, जड़-चेतन की भिन्नता की जिसे खबर नहीं हे और शरीर-कर्म-राग-पुण्य-पाप आदि पर को ही आत्मा मानता है, ऐसा मूढ़, अनात्मवादी अज्ञानी जीव आठ वाक्यों द्वारा तर्क करके कहता है कि—वे कर्म आदि ही हमें तो दृष्टिगोचर होते हैं, उन कर्मों से भिन्न दूसरा कोई जीव हमारे देखने में नहीं आता!

ऐसे अज्ञानी को यहाँ आचार्य भगवान समझाते हैं कि—हे भाई! तेरी बात सत्य नहीं है, तू सत्यार्थवादी नहीं है। भगवान के आगम से, युक्ति से और ज्ञानियों के स्वानुभव से—इन तीनों से तेरी बात गलत सिद्ध होती है। आगम, युक्ति और स्वानुभव द्वारा आचार्यदेव अज्ञानी के आठों बोलों का खंडन करके यह अपूर्व न्याय सिद्ध करते हैं कि—परमार्थरूप जीव राग से, कर्म से और शरीर से भिन्न चैतन्यस्वभावरूप है, ऐसे जीव को भेदज्ञानी अपने अंतर में

स्वसंवेदन द्वारा प्रत्यक्ष अनुभवते हैं; भगवान के आगम में भी जीव को चैतन्यस्वभावरूप ही कहा है, रागादि को जीव नहीं कहा, और युक्तियों द्वारा भी जीव रागादि से भिन्न चैतन्यस्वभावरूप ही सिद्ध होता है—इसलिये हे जीव! तू अन्य व्यर्थ का कोलाहल छोड़कर ऐसे जीव को अपने अंतर में अनुभवने का उद्यम कर। एक लक्ष से ऐसा उद्यम करने पर छह महीने में तो तुझे पुद्गल से भिन्न चैतन्यप्रकाश से जगमगाता हुआ अपना आत्मा अंतर में ही दृष्टिगोचर होगा।

अज्ञानी की आठ प्रकार की मिथ्या मान्यता के सामने भेदज्ञानी के स्वानुभव को रखकर आचार्यदेव उन मिथ्यामान्यताओं का खंडन करते हैं, और सत्य आत्मा चैतन्यस्वभावरूप है, वह स्वानुभवगम्य हो सकता है, ऐसा बतलाते हैं:—

1. कोयला कालेपन से भिन्न नहीं है परंतु सुवर्ण तो कालेपन से भिन्न है;
उसीप्रकार अध्यवसान राग-द्वेष से भिन्न नहीं है,
परंतु जीव तो राग-द्वेष से भिन्न है।

अज्ञानी कहता था कि—जिसप्रकार कालेपन से भिन्न कोई कोयला दिखाई नहीं देता, उसीप्रकार राग-द्वेषादि मलिन अध्यवसानों से भिन्न कोई जीव हमें दिखायी नहीं देता, इसलिये वे राग-द्वेषादि ही जीव है।

तब स्वानुभव की युक्ति से आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! भेदज्ञान द्वारा ज्ञानी राग-द्वेष से भिन्न ऐसे चैतन्यस्वभावरूप स्वयं अपने को अनुभवते हैं, अतः राग-द्वेषरहित चैतन्यस्वभावरूप जीव है।

कालेपन से भिन्न कोयला भले न हो, परंतु कालेपन से भिन्न सुवर्ण तो दिखाई देता है ना! उसीप्रकार रागादि मलिन अध्यवसानों से भिन्न सुवर्ण समान शुद्ध जीव ज्ञानियों को भेदज्ञान द्वारा साक्षात् अनुभव में आता है। अरे, ज्ञान कहीं राग-द्वेषयुक्त काला होता है? सम्यक् मति-श्रुतज्ञान में जीव राग से भिन्न चैतन्यस्वभावरूप अनुभव में आता है।

रागादि भावों में कहीं चैतन्यस्वभावपना नहीं है, जीव ही चैतन्यस्वभावरूप प्रकाशमान है। भगवान सर्वज्ञदेव ने तो चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य कहा है। रागादि में कहीं चैतन्यपना नहीं है, वे तो चैतन्य से शून्य हैं—चैतन्य रहित हैं—चैतन्य से भिन्न जाति के हैं, अतः वे

रागादिभाव वास्तव में जीव नहीं हैं। जिसमें चेतनपना न हो, उसे जीव कैसे कहा जाये? इसलिए सर्वज्ञ के आगम में ऐसा कहा है कि उन रागादिभावोंरूप जीव नहीं है, चैतन्यस्वभावरूप जीव रागादि से भिन्न है, और भेदज्ञानी ज्ञान और राग की भिन्नता को पहिचानकर राग से भिन्न चैतन्यस्वभाव का साक्षात् अनुभव करते हैं। अहा, हमें तो ऐसा भिन्न चिदानंद जीव साक्षात् दिखायी देता है। हे भाई! तू अंतर में चैतन्यभाव का अभ्यास कर तो तुझे भी अपने अंतर में राग के विलास से भिन्न, चैतन्यस्वभाव से विलसित अपना आत्मा साक्षात् अनुभव में आयेगा, जिसके अनुभव से तुझे महान आनंद होगा।

राग-द्वेषादि भाव न हों तो जीव कहीं मर नहीं जाता, राग-द्वेष के बिना भी चैतन्यस्वभावरूप से जीव सदा जीवंत है। राग से पृथक् होकर ज्ञान द्वारा अंतर में देखने पर ऐसा जीव साक्षात् अनुभव में आता है। अरे, एकबार ऐसे आत्मा को तू अंतर में उतरकर देख तो सही... उसके सन्मुख होते ही तुझे भव के अंत की भनक आ जायेगी और आनंदमय निर्वाणपुरी (मोक्ष) का द्वार खुल जायेगा।

इसप्रकार अज्ञानी के कुतर्क के सामने भेदज्ञानी के स्वानुभव को रखकर युक्ति से आचार्यदेव रागादि से अत्यन्त भिन्न चैतन्यस्वभावरूप जीव सिद्ध किया, और सर्वज्ञ के आगम की भी साक्षी दी।

अध्यात्मरस की अमृतवर्षा करते हुए स्वामीजी कहते हैं कि देखो, आज श्रावण शुक्ला एकम है... यह श्रावण की अमृतवर्षा होती है... ज्ञानी के अंतर में सम्यक्त्वरूपी श्रावण आया है... उसका सरस वर्णन कवि श्री भूधरदासजी ने अपने अध्यात्मपद 'आज मेरे समकित सावन आयो...' पद में किया है।

जिसप्रकार राग-द्वेषादि से भिन्न चैतन्यस्वभावरूप जीव आचार्यदेव ने आगम से, युक्ति से और स्वानुभव से सिद्ध किया है; उसीप्रकार समस्त परभावों से तथा कर्म से और शरीरादि से भी अत्यंत भिन्न चैतन्यस्वभावरूप जीव है—ऐसे आचार्यदेव बड़ी अच्छी तरह समझायेंगे और फिर ऐसे आत्मा के अनुभव के लिये प्रेरणा देंगे कि हे भाई! यदि तू अन्य कोलाहल छोड़कर हम कहते हैं, उस जीव को अपने अंतर में देखने का एकाग्रचित्त से छह महीने तक अभ्यास करेगा तो तुझे भी अवश्य हमारी भाँति रागादि से भिन्न चैतन्यस्वभाव का अनुभव होगा।

2. कर्म से भिन्न चैतन्यस्वभावरूप जीव को ज्ञानी अनुभवते हैं।

दूसरे बोल में अज्ञानी ने ऐसा कहा था कि—अनादि परंपरा से जो संसारभ्रमणरूप क्रियाएँ हो रही हैं, वह कर्म की क्रीड़ा है, वह कर्मरहित जीव हमें तो दिखायी नहीं देता, इसलिये कर्म ही जीव है ?

उसके उत्तर में आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई, कर्म की समस्त परंपरा से भिन्न, राग और गति रहित, चैतन्यस्वभावरूप जीव है—वह भेदज्ञानियों को स्वयं अनुभव में आता है। राग बिना, इन्द्रिय की अपेक्षा बिना ज्ञानी अंतर में अपने आत्मा को एक ज्ञायकस्वभावरूप से साक्षात् अनुभवते हैं।—ऐसा अनुभव करे, तब आत्मा को यथार्थरूप से माना कहा जाता है। अज्ञानी को कर्म ही दिखायी देते हैं, कर्म से भिन्न जीव दिखायी नहीं देता, ज्ञानी को ज्ञानस्वभाव में कर्म दिखायी नहीं देता; ज्ञानस्वभाव के सन्मुख होने पर आत्मा में कर्मों का संबंध ही कहाँ है ? कर्म के संबंधरहित आत्मा धर्मी को ज्ञानस्वभावरूप से अनुभव में आता है। कर्म की क्रीड़ा से अत्यंत भिन्न मेरी चेतना की क्रीड़ा है।—ऐसा अनुभव करते हैं, वे ही सत्यार्थवादी हैं, वे ही सत्य आत्मा को जाननेवाले हैं; परंतु अन्य जो आत्मा को कर्मवाला ही देखते हैं-वे परमार्थवादी हैं; वे आत्मा को जाननेवाले नहीं हैं। अरे, कर्म तो जड़-पुद्गल की रचना है—उसे जीव कौन कहेगा! सर्वज्ञ भगवान ने तो उसे अजीव कहा है, वह चेतनारहित है; और जीव को तो चैतन्यस्वभावरूप कहा है।—ऐसे आत्मा को हे जीव! तू जान।

3. रागरसरहित चैतन्यरस से भरपूर जीव हमें अनुभव में आता है

अकेले रागरस का ही अनुभव करनेवाला अज्ञानी कहता था कि तीव्रराग और मंदराग ऐसे रागरूप अध्यवसानों की जो परंपरा है, वही जीव है, क्योंकि उससे भिन्न रागरहित जीव हमें दिखायी नहीं देता।

आचार्यदेव उसका स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि—अरे मूढ! राग में चेतनपना कहाँ है ? तीव्र और मंद ऐसे अध्यवसानों की जो संतति है, वह तो रागरस से भरपूर है, उसमें कहीं चेतनरस नहीं है। आत्मा तो चेतनरस से भरपूर है। वह चेतनरस से भरपूर आत्मा रागादि अध्यवसानों से बिलकुल भिन्न भेदज्ञानी साक्षात् अनुभवते हैं, इसलिये आत्मा, वह तीव्र-मंद

अध्यावसानों की पंक्ति से भिन्न ही है। चैतन्य की संतति के मध्य में रागादि अध्यवसान नहीं हैं।

सर्वज्ञ भगवान ने आगम में ऐसा ही कहा है कि रागादि चेतनभावों से भिन्न चैतन्यस्वभावरूप जीव है।

स्वानुभवपूर्वक युक्ति से भी ऐसा ही सिद्ध होता है, क्योंकि रागादि के अनुभव में चैतन्य का स्वाद नहीं है, और चैतन्य के स्वाद में रागादि नहीं है, इसलिये राग से भिन्न चैतन्य स्वभावरूप जीव है।

धर्मात्मा-भेदज्ञानी जीव अंतर्दृष्टि से अपने आत्मा को रागादि समस्त अन्य भावों से भिन्न, ज्ञानभावरूप स्पष्ट अनुभवता है, उस अनुभूति में रागादि का अभाव है।

—इसप्रकार आगम से, युक्ति से, स्वानुभव से सर्वप्रकार राग और ज्ञान की भिन्नता है, और ऐसी भिन्नता के अभ्यास द्वारा हे जीव! तुझे भी अपना आत्मा रागादि रहित, ज्ञानस्वभावरूप दिखाई देगा।

4. शरीर से जीव भिन्न है; चैतन्यस्वरूप आत्मा की अनुभूति में शरीर नहीं है।

नोकर्मरूप यह शरीर नया-पुराना होता रहता है, एक शरीर छूटता है और दूसरा आता है—शरीररहित जीव तो कभी भी देखने में नहीं आता, इसलिये यह शरीर है, वही जीव है, इससे भिन्न दूसरा कोई जीव नहीं है—ऐसा अज्ञानी ने चौथे बोल में कहा था।

यहाँ उसका खंडन करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि—अरे भाई! शरीर तो पुद्गलमय है, अचेतन है, उसमें चेतनपना नहीं है, तो वह जीव कहाँ से हो गया? जीव तो चेतनरूप होता है। शरीर तो चेतनारहित अजीव है। ज्ञानी तो अपने आत्मा को जड़ शरीर से अत्यंत भिन्न, चैतन्यस्वभावरूप स्पष्ट अनुभवते हैं।

शरीर की कोई भी चेष्टा, वह जीव का क्रिया नहीं है, उस क्रिया को जो जीव की मानते हैं, वे शरीरादि अजीव को ही जीव माननेवाले हैं। ऐसे जीव जड़-चेतन के विवेकरहित हैं; और मृतक कलेवर ऐसे शरीर ही में मुग्ध हो रहे हैं, उन्हें चैतन्यअमृतस्वरूप ऐसे अपने आत्मा की खबर नहीं है। शरीर से रहित अपना कोई अस्तित्व ही उन्हें भासित नहीं होता। ज्ञानी को तो स्पष्ट भेदज्ञान है कि जड़ शरीर के अस्तित्व में मैं नहीं हूँ, तो अपने चैतन्य-अस्तित्व में हूँ। मेरी

चैतन्यसत्ता में जड़ की सत्ता नहीं है, मैं जड़ की सत्ता में नहीं हूँ; आत्मा का कोई भी गुण या पर्याय अचेतन शरीर में नहीं है।—इसप्रकार जड़-चेतन दोनों का अस्तित्व सर्वथा भिन्न है। उसका भेदज्ञान करके धर्मीजीव अपने को शरीरादि समस्त अचेतन से अत्यंत भिन्न, परम चैतन्यस्वरूप अनुभवता है। अतीन्द्रियज्ञान में स्वसंवेदन द्वारा ऐसे आत्मा का अनुभव होता है। शरीर का संयोग होने पर भी शरीर से भिन्न आत्मा अनुभव में आ सकता है। चैतन्य के अनुभव में शरीर कहीं साथ नहीं आता, अनुभव से वह भिन्न ही रहता है।—इसप्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा शरीर से बिलकुल भिन्न है।

5. पुण्य-पाप का विपाक या शुभाशुभभाव, वह जीव नहीं है; चेतनस्वभावी जीव पुण्य-पापरहित, शुभाशुभरहित अनुभव में आता है।

अज्ञानी कहता था कि कर्म के विपाकरूप पुण्य-पाप, वही जीव है; समस्त संसार पुण्य-पाप से ही व्याप्त दिखायी देता है; पुण्य-पापरहित तो जीव हमें कहीं दिखायी नहीं देता; इसलिये वे पुण्य-पाप के कारणरूप शुभाशुभभाव ही जीव है!

आचार्यदेव समझाते हैं कि हे भाई! पुण्य-पापरूप कर्मों का विपाक, वह जीव नहीं है; शुभाशुभ से भिन्न चैतन्यस्वभावरूप जीव है, उसका भेदज्ञानी जीव अनुभव करते हैं। तू शुभाशुभराग को पृथक् करके देख तो तुझे भी अपना आत्मा चैतन्यस्वरूप दिखायी देगा। आत्मा का स्वभाव तो सुख है, और पुण्य-पाप का फल दु:ख है, उसे आत्मा कैसे कहा जाये? शुभाशुभ कर्म की ओर ढलता हुआ भाव दु:खरूप है, चेतनस्वभाव की ओर ढलता हुआ भाव सुखरूप है;—इसप्रकार उस शुभाशुभ का समावेश आत्मा के स्वभाव में नहीं होता, वे आत्मा के स्वभाव के साथ संबंधवाले नहीं हैं, परंतु जड़कर्म के साथ संबंधवाले हैं। इसप्रकार तेरा ज्ञानस्वभाव शुभाशुभ कर्मों से अत्यंत भिन्न है। ऐसे भिन्न स्वरूप को पहिचानकर भेदज्ञान करने से तुझे भी शुभाशुभ समस्त कर्मों से भिन्न चैतन्यस्वभावरूप जीव साक्षात् अनुभव में आयेगा। पुण्य-पापकर्म और शुभाशुभभाव आत्मा हैं—ऐसा तेरा भ्रम भेदज्ञान द्वारा मिट जायेगा। एक ओर आत्मा का चेतनस्वभाव, उसमें जितना समावेश हो, उतना तू और दूसरी ओर चेतनस्वभाव से भिन्न जो कोई भाव हों, वे जीव नहीं हैं, वह जीव का स्वभाव नहीं है अर्थात् पुद्गल का स्वभाव है—अजीव है। ऐसे भेदज्ञान का अंतर में सच्ची लगन से अधिक से अधिक

छह महीने तक निरंतर अभ्यास करने पर तुझे अवश्य पुद्गल से भिन्न अपने चैतन्य का अपूर्व विलास अनुभव में आयेगा।

6. साता-असाता से पार अतीन्द्रिय सुखस्वरूप आत्मा को ज्ञानी अपने में अनुभवते हैं

अज्ञानी कहता है कि साता-असातारूप जो कर्मफल है, वही जीव है, क्योंकि साता-असाताजनित सुख-दुःख ही हमें अनुभव में आते हैं, उन सुख-दुःख रहित जीव हमें कभी दिखायी नहीं देता।

तब आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! तेरी बात मिथ्या है; साता-असाता में आत्मा होने का तुझे भ्रम हो गया है, परंतु वह वास्तव में जीव नहीं है; साता-असाता में तो कर्म की ओर का भाव है, उससे भिन्न चैतन्यस्वभावरूप जीव है, वह भेदज्ञान द्वारा अनुभव में आये ऐसा है।

अहा, चैतन्यतत्त्व! वह साता के वेदन से पार है। अज्ञानी पुण्यजनित साता को सुख मान लेते हैं, इसलिये वे उसी को जीव मानते हैं; परंतु भाई! यह तो पुद्गल की ओर का भाव है। चैतन्य का सुख तो बिलकुल अनाकुल परम शांत है, उसमें साता की भी अपेक्षा नहीं है। ऐसा सुख जिसकी सन्मुखता से प्रगट हो, उसे वास्तव में जीव कहते हैं। धर्मी जीव आत्मा के सन्मुख होकर ऐसे आत्मा को साक्षात् अनुभवते हैं। इसलिये हे भाई! तू भी 'साता-असाता से भिन्न जीव नहीं है'—ऐसी अपनी मिथ्या हठ को छोड़ और हम कहते हैं तदनुसार ज्ञानस्वभावी आत्मा को देखने का अपने अंतर में अभ्यास कर। छह महीने के अभ्यास से तो तेरे हृदय में स्वानुभूति से आत्मा सुशोभित से हो उठेगा।

असाता के दुःख से छूटकर किंचित् साता हो, वहाँ तो मानों मैं सुखी हो गया! परंतु भाई! वह सुख सच्चा नहीं है, सुख में तू नहीं है, साता-असाता से पार ज्ञानस्वभाव का जो अतीन्द्रियसुख, उसमें तू है, वह जीव का सच्चा स्वरूप है। ऐसे स्वरूप में आत्मा का अनुभव कर!

7. राग का स्वाद और ज्ञान का स्वाद एक नहीं परंतु भिन्न है

अज्ञानी कहता था कि कर्म का स्वाद और चेतन का स्वाद—दोनों मिश्र स्वाद में आते

हैं, वही हमें जीव प्रतीत होता है। जिसप्रकार श्रीखंड में दही और शक्कर का स्वाद एकसाथ अनुभव में आता है, उसीप्रकार हमें तो ज्ञान ही रागादि स्वादवाला अनुभव में आता है; राग से भिन्न तो ज्ञान का कोई स्वाद हमें अनुभव में नहीं आता; बिलकुल कर्मरहित तो कोई जीव दिखायी नहीं देता; इसलिये आत्मा और कर्म का संयोग, वह जीव है!

उसे आचार्यदेव समझाते हैं कि अरे भाई! चैतन्यस्वभाववाला जीव कर्म से बिलकुल भिन्न ही है; अज्ञानी उसे न देखे तो क्या हुआ? भेदज्ञानी तो ऐसे जीव को प्रत्यक्ष अनुभवते हैं। श्रीखंड में भी दही और शक्कर का स्वाद वास्तव में भिन्न ही है; मीठापन और खट्टापन दोनों कहीं एक नहीं है; उसीप्रकार आतम में शांत अनाकुल मीठारस, वह तो चैतन्य का स्वाद है, और आकुलता-रागादि, वह कर्म की ओर का खट्टा स्वाद है, उन दोनों में एकता नहीं परंतु बिलकुल भिन्नता है। ज्ञानी स्वानुभव में अपने आत्मा को चैतन्यस्वादरूप, कर्म से सर्वथा भिन्न ही अनुभवता है।

भाई, ऐसे आत्मा का अंतर में अनुभव किया जा सकता है। परंतु यदि तू हठ करके आत्मा भिन्न नहीं है... भिन्न नहीं है... ऐसा निषेध ही करता रहेगा तो मुझे आत्मा का अनुभव कहाँ से होगा? इसलिये तू अपनी हठ छोड़ और व्यर्थ का कोलाहल छोड़कर, हम जैसा कहते हैं, तदनुसार आत्मा को लक्ष में लेकर उसके अनुभव का उद्यम कर, तो छह महीने में तुझे भी अवश्य अपने आत्मा का अनुभव होगा, और पुद्गलकर्मों से भिन्न चेतना द्वारा तेरा आत्मा शोभित हो उठेगा।

8. आठ लकड़ियों से चारपाई भिन्न नहीं है, परंतु उसमें सोनेवालो तो भिन्न है! उसीप्रकार कर्मसंयोग को जाननेवाला जीव, वह कर्मों से बिलकुल भिन्न है।

अज्ञानी का तर्क था कि—जिसप्रकार चार पाये तथा पाटियाँ आदि आठ लकड़ियों से मिलकर चारपाई बनी है, आठ लकड़ियों से भिन्न कोई चारपाई नहीं है, उसीप्रकार आठ कर्मों का संयोग ही जीव है, कर्मों से भिन्न कोई जीव देखने में नहीं आता!

उसे आचार्यदेव समझाते हैं कि—हे भाई! कर्मों का संयोग, वह जीव नहीं है। कर्म जड़ हैं, वे कर्म इकट्ठे होकर भी जड़ होते हैं, उनमें से चेतनवस्तु नहीं होती; चेतनवस्तु तो उनसे भिन्न है। आठ लकड़ियाँ मिलकर उनमें से लकड़ी की चारपाई होती है परंतु आठ लकड़ियाँ मिलने

से मनुष्य नहीं होता। मनुष्य तो भिन्न ही है। आठ लकड़ियों से चारपाई भिन्न नहीं है, परंतु चारपाई में सोनेवाला मनुष्य तो उससे भिन्न है। चारपाई जल जाये या टूट जाये, तथापि मनुष्य तो जीवित रहता है। उसीप्रकार लकड़ी जैसे जो आठ कर्म हैं, वे अचेतन हैं, उनके द्वारा शरीर की रचना होती है, वह भी अचेतन है, उस अचेतन का संयोग होकर अचेतन की रचना होती है परंतु अचेतन में से कहीं जीव की रचना नहीं होती। जीव तो चेतनमय है, वह अचेतन कर्मों से भिन्न है। यह कर्म हैं—ऐसा जाननेवाला तो कर्मों से भिन्न ही है, कर्म को जाननेवाला स्वयं कहीं कर्मरूप नहीं है। इसप्रकार स्वभाव से देखने पर कर्म से अत्यंत भिन्न चैतन्यस्वभावरूप जीव अनुभव में आता है। चैतन्यस्वभावरूप से देखने पर तो जीव सदा कर्मों से भिन्न ही अनुभव में आता है। भगवान सर्वज्ञदेव ने 'जीवो उवओगलक्खणो' ऐसा कहा है। जीव सदा उपयोगलक्षणरूप है; उपयोगशून्य अन्य कोई भाव नहीं है।

पर्यायदृष्टि से देखने पर रागादिभाव जीव के साथ संबंधवाले दिखायी देते हैं, परंतु चेतनस्वभाव से देखने पर वे कोई भाव जीव के स्वभावरूप से अनुभव में नहीं आते, एक चेतनस्वभावरूप ही जीव अनुभव में आता है। चेतनभाव से भिन्न ऐसे रागादि किसी भाव को जीव कहना, वह मात्र व्यवहार है। परमार्थरूप शुद्ध जीव को अनुभूति में उन किन्हीं भावों का प्रवेश नहीं है, अर्थात् ज्ञान की अनुभूति से वे भिन्न हैं।—इसप्रकार शुद्ध चैतन्यस्वभाव की अनुभूति द्वारा तथा सर्वज्ञ के आगम द्वारा और सम्यक् युक्ति द्वारा समस्त अन्य भावों से जीव का भेदज्ञान करना चाहिये।

अहो, देखो तो सही! आचार्यदेव ने कैसा सुंदर भेदज्ञान कराया है! मात्र चैतन्यस्वभाव की अनुभूति खड़ी कर दी है। अनुभूति में परभावों का कोई अंश नहीं है, गुणस्थान मार्गणास्थान आदि कोई भेद अनुभूति में दिखायी नहीं देते; अनुभूति में अनंत गुण के रस से पूर्ण एकाकार चैतन्य परमतत्त्व ही अनुभव में आता है, उसमें निर्विकल्पता है, उसमें अतीन्द्रिय महा आनंद है।

इसप्रकार रागादि से अत्यंत भिन्न आत्मा बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! तू ऐसे आत्मा का अनुभव अपने अंतर में कर... ऐसा निर्विकल्प अनुभव करना ही करनेयोग्य कार्य है। इस कार्य को छोड़कर तू अन्य व्यर्थ के कार्यों में कहाँ रुका है? चैतन्यकार्य को भूलकर तू राग के आग्रह में क्यों रुका है? संत प्रेम से समझाते हैं कि तुझे अपना आत्मा अंतर

में राग से भिन्न चैतन्यभावरूप अनुभव में आयेगा... इसलिये तू समस्त बाह्य निष्फल विकल्पों से विरक्त हो, और अंतर में चैतन्यरसरूप आत्मा को खोज! एकबार अंतर में शोध तो कर, तुझे अवश्य अपने आत्मा की प्राप्ति होगी। अनेक जीवों ने भेदज्ञान द्वारा ऐसे आत्मा का अनुभव किया है, और तुझे भी उसका अनुभव अवश्य होगा।

[गुजराती आत्मधर्म अंक नं. 346, पृष्ठ 30 से 38 तक का हिन्दी अनुवाद]

छह अक्षर

'शुद्धचिद्रूप मैं' ऐसे छह अक्षरों के विचार से उनके वाच्यरूप जो 'शुद्धचिद्रूप' प्राप्त होता है वह, श्रुतसमुद्र में से निकला हुआ उत्तम रत्न है,—वह आदरणीय है, सर्व तीर्थों में वह उत्कृष्ट तीर्थ है, सुख का भंडार है, मोक्षनगरी में जाने के लिये वह शीघ्रगामी (राकेट से भी शीघ्रगामी) यान है; कर्मरज के ढ़ेर को छिन्न-भिन्न करने के लिये वह वायु है; भववन को जला देने के लिये वह अग्नि है।—ऐसा जानकर हे बुद्धिमान! तू 'शुद्धचिद्रूप मैं'—ऐसे छह अक्षरों द्वारा शुद्धचिद्रूप का चिंतवन कर।

अब हम अपने शुद्धचिद्रूप का स्मरण करते हैं, तब शुभ-अशुभकार्य कहाँ विलीन हो जाते हैं, हम नहीं जानते; चेतन या अचेतनस्वरूप बाह्य-पदार्थों का संग कहाँ जाता है, उसकी खबर नहीं पड़ती और रागादिभाव कहाँ अलोप हो जाते हैं, उसका लक्ष नहीं रहता। उस समय तो बस! अपना एक शुद्धचिद्रूप ही हमें दृष्टिगोचर होता है, अन्य कुछ नहीं।

धर्मात्मा की अद्भुत महिमावंत आत्मदशा

जैनशासन में धर्मात्मा को पहिचानने की अद्भुत रीति है... आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! पूर्व काल में तुझे अपने एकत्वस्वभव को पहिचानना नहीं आया और आत्मा को जाननेवाले ज्ञानियों की सेवा करना भी तुझे भलीभाँति नहीं आया। समयसार में ज्ञानी को पहिचानने की जो अद्भुत रीति आचार्यदेव ने बतलायी है, वही रीति स्वामीजी हमें समझाते हैं और ज्ञानी की सच्ची सेवा करके आत्महित साधना सिखलाते हैं। भाद्रपद कृष्णा दूज के आसपास के यह प्रवचन पढ़कर मुमुक्षुओं को प्रसन्नता होगी। (सम्पादक)

* धर्मात्मा अतीन्द्रिय आनंद के रसिक हैं, संसार के अन्य किन्हीं पदार्थों का रस उन्हें नहीं है।
* चैतन्य के ऐसे रस द्वारा हे जीव! तू अपनी शुद्ध परिणति का रक्षक हो।
* अहो, निर्विकल्प आराधना... उसमें अपने परम चैतन्यभाव का ही वेदन है; विकल्प का वेदन उसमें नहीं है।
* धर्मी को परम आनंद के साथ चैतन्यप्रभु की अपने में भेंट हुई है, मैं स्वयं ही ऐसा चैतन्यप्रभु हूँ—ऐसा वह अनुभवता है।
* सम्यग्दर्शन सदा अपने परम चैतन्यतत्त्व में सर्वथा अंतर्मुख वर्तता है; परभावों से वह विमुख है।
* आराधक के परिणाम की धारा चैतन्य में सदा अंतर्मुख वर्तती है, उसकी निर्मल पर्याय की संतति अटूट धारावाही वर्तती है।
* सर्वज्ञ परमात्मा ने जैसा आत्मा देखा है, वैसा ही आत्मा धर्मी ने अपने अंतर में देखा है।

सर्वज्ञ के शुद्ध आत्मा में और मेरे शुद्ध आत्मा में कोई अंतर नहीं है। ऐसी धर्मी को स्वानुभूतिपूर्वक सच्ची श्रद्धा है।

* भव के अंत के लिये साधक संत ऐसा कहते हैं कि अपने परमात्मतत्त्व में अंतर्मुख परिणति कर... उसमें भव नहीं है। धर्मी की परिणति भव-वन से बाहर निकल गई है।

* अरे रे! यह भव और शरीर का भार धारण करना, वह तो जीव को कलंक है। धर्मी जीव उससे भिन्न होकर चैतन्यपरिणतिरूप धारावाही परिणमित होता है, वह भव-कलंक से मुक्त है, और मोक्षमार्ग में शोभायमान है।

* अहो, अंतर में आत्मवस्तु प्रगट हुए बिना जीव को शांति या धर्म कहाँ से हो?

* अनंत आनंदधाम आत्मभगवान अंतर में विराजमान है; उसे देखो! बाह्य से शरीर को न देखो, राग को न देखो। उन सबसे भिन्न चैतन्य को अंतर में देखो।

* ऐसे चैतन्य में अंतर्मुख होकर तुम उत्साहपूर्वक उसकी आराधना करो... और दूसरों को भी उसकी आराधना करने को कहो... अनुमोदना करो। यही सच्चा जीवन है।

* अहो, ऐसे चैतन्य की आराधना... उससे श्रेष्ठ इस जगत में कुछ नहीं है। ऐसी आराधना ही भगवंतों की कृपा और प्रसन्नता है।

* धर्मी को असंख्य प्रदेश में आराधना की ऐसी प्रसन्नता है कि बाह्य में कहीं चैन नहीं पड़ता। वह अंतर का उद्यमी और बाह्य का आलसी है।

* धर्मी को अपने अंतर में चैतन्य की आनंदमय रिद्धि-सिद्धि सदा वृद्धिंगत है; वह परमात्मा का दास और जगत से उदास है।—ऐसे धर्मात्मा अंतर के लक्ष द्वारा सदैव सुखी हैं।

* अरे जीव! तेरा उत्साह कहाँ कार्य करता है? तेरा उत्साह चैतन्य में कार्यशील है या राग में कार्य कर रहा है। तेरा बाह्य उत्साह तुझे कैसे अंतरोन्मुख होने देगा? अपने चैतन्य की अचिंत्य महिमा के प्रति उल्लास में धर्मी को राग के किसी भी अंश का उत्साह नहीं है, उससे तो उसकी चेतना उदास है—यह धर्मी का लक्षण है।

* हे भाई, आनंद के वेदनसहित आत्मा का आराधन कर, उसी में तेरे स्वकार्य की सिद्धि

है। इसके अतिरिक्त अन्य सर्व कार्यों को तो धर्मी जीव अकार्य समझते हैं।

* शांत-चैतन्यरस से भरपूर अपनी निर्मल पर्यायरूपी कलश द्वारा तू अपने आत्मा का अभिषेक करके परभावरूपी मैल को धो डाल।

* अहो, परमात्मा की सेवा तो ऐसे आत्मा की पहिचान द्वारा होती है; राग द्वारा आत्मा की सेवा नहीं होती। राग तो अपराध है।

* भाई! अपने शांतरस के समुद्र में डुबकी लगाकर स्नान कर! उसमें डुबकी लगाते ही तेरे समस्त रागादि अपराध और कलंक धुल जायेंगे। चैतन्य में कलंक कैसा?

* पंच परमेष्ठी भगवंत परम शुद्धोपयोग द्वारा चैतन्य में अंतर्लीन वर्तते हुए साक्षात् मोक्ष की आराधना कर रहे हैं।—मैं भी अंतर्मुख आराधना द्वारा चैतन्य का अनुभव करता हुआ पंच परमेष्ठी की पंक्ति में आया हूँ—ऐसा धर्मी जानता है।

* अरे, दुनिया की दुनिया जाने! मुझे दुनिया से क्या काम? मेरी वस्तु तो मुझमें विद्यमान है और मेरे स्पष्ट अनुभव में आती है।—फिर दुनिया कुछ दूसरा कहे, उससे कहीं मेरी वस्तु अन्यथा हो जानेवाली नहीं है।

* राग राग में है; राग का अंश मेरी चैतन्यवस्तु में नहीं। राग रागरूप में विद्यमान है, वह चैतन्यरूप नहीं होता; चैतन्यभाव चैतन्यरूप ही वर्तता है, वह राग से भिन्न है, राग को चेतना के साथ कभी तन्मयता नहीं है। प्रज्ञा द्वारा ऐसा भेदज्ञान होता है।

* लोग जिनमंदिर में भगवान को देखते हैं परंतु अंदर तनमंदिर में स्वयं चैतन्यदेव विराजमान है, उसे नहीं देखते। जिनमंदिर में जिनकी स्थापना है—ऐसे जिनदेव समान ही मैं हूँ—इसप्रकार ज्ञानी अपने आत्मा को ही देवरूप देखकर उसकी आराधना करते हैं।

* अहा, ऐसा सर्वज्ञस्वभावी जिन मैं स्वयं हूँ, ऐसा जो नहीं मानता, नहीं जानता, और नहीं अनुभवता, वह जीव वास्तव में आत्मा को नहीं मानता; सर्वज्ञ-वीतरागदेव के मार्ग का उसने स्वीकार नहीं किया है।

* अहो, सर्वज्ञ का मार्ग अर्थात् निजस्वरूप की अनुभूति का मार्ग—वह तो अंतर का मार्ग है।

* रागादिभाव चैतन्य की अनुभूति से बाह्य हैं, अर्थात् चेतन की अनुभूति से भिन्न हैं। अत: पुद्गलमय हैं। जितनी चेतनमय अनुभूति है, उतना ही आत्मा है।

* जो रागादि के वेदन में स्थित हैं, वे कहीं राग को अपनी अनुभूति से भिन्न नहीं जान सकते।

* रागादि को अनुभूति से भिन्न वास्तव में वही जान सकता है, जिसने राग से भिन्न चैतन्य की अनुभूति की हो।—ऐसी अनुभूति के बिना राग से भिन्नत्व नहीं जाना जा सकता।

* अनुभूति, वह पर्याय है; स्वभाव के साथ अभेद हुई वह पर्याय रागादि से अत्यंत भिन्न है। चैतन्य के अनुभव में झुकी हुई परिणति, उससे बाहर सर्व रागादि भाव हैं; इसलिये अंतर की अनुभूति में चैतन्य को देखनेवाले जीव को वे रागादिभाव अपने में दिखायी नहीं देते।—ऐसी अनुभूति, वह जिनमार्ग है।

* अहो, ऐसे मार्ग का एक अंश भी जहाँ अनुभव में आया, वहाँ अनंत-अनंत दु:ख से भरे हुए भव-समुद्र को जीव पार कर गया, और मोक्ष के किनारे आ गया। वह जिन का नंदन हुआ।...

* वह धर्मी जीव अनुभूति का कथन करे, तब मानों भगवान उसके अंतर में विराजमान होकर बोलते हों—ऐसा अविरुद्ध अलौकिक वर्णन आता है।

* अंतर्मुख होकर शुद्ध आत्मा की आराधना, वह धर्मात्मा का आचार है, उसके अतिरिक्त अन्य सब अनाचार है।

* सम्यग्दर्शन अपने भगवान आत्मा को अंतर में देखकर उसी की आराधना करता है, परभाव के किसी भी अंश का आराधन वह नहीं करता।

* अरे, आत्मा की अनुभूति-आत्मा की आराधना, वह कोई साधारण वस्तु है! पर से परम उपेक्षा करके परिणति चैतन्यतत्त्व में एकदम अंतर्मुखरूप से एकाकार हुई, तब आत्मा की अनुभूति हुई, वह जीव आराधक हुआ, उसने परम आनंदरूपी शमजल द्वारा अपने आत्मा का अभिषेक किया।

* ऐसे आराधक जीव को साथ में रागादि भाव होते हैं, वे कहीं आराधना में प्रवेश नहीं

करते, वे तो परमात्मतत्त्व से बाहर हैं, इसलिये उन्हें अनाचार कहा है। एक कालवर्ती होने पर भी उन परभावों के साथ धर्मी की चेतना को एकपना नहीं है, अत्यंत भिन्नपना है।

* अहो, आत्मा के स्वभाव की यह बात उत्तम है, हितकर है। भाई! इसे विपरीत न कहो... कठिन न कहो... यह तो भगवान का कहा हुआ परम सत्य और तुझसे हो सके ऐसा है। भले ही गृहस्थदशा में हो, परंतु उसे भी अंतर में आत्मा है ना! अपने आत्मा की आराधना वह भी कर सकता है। ऐसे कठिन पंचम काल में जन्म लेकर भी जिसने आत्मा की आराधना कर ली, वह जीव वास्तव में धन्य है!

* साक्षात् सीमंधरनाथ परमात्मा की जिन्होंने यात्रा की, ऐसे कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि अहो! हमारे आत्मा में आनंद की लीनतारूप जितनी आराधना वर्तती है, वही हमारा परमार्थ आचार है, उससे विपरीत समस्त शुभभाव भी अनाचार है।

* यह जानकर हे जीव! तू शुद्ध आत्मा में स्थिरभाव कर, परमात्मतत्त्व की भावना करके सहज चैतन्यविलास की परिणति कर और सहज वैराग्यभावनारूप परम उपेक्षा संयम को धारण कर। आनंद की अनुभूति के कलश भर-भरके अपने आत्मा का अभिषेक कर। अन्य लौकिक विकल्प-जाल का तुझे क्या काम?

* प्रभो! अपने चैतन्य की आराधना के अतिरिक्त अन्य सबको अनाचार जानकर उसे छोड़! मुनियों को शुभराग के समय जो व्यवहार-आचार कहा है, उसी को वीतरागी स्थिरता की अपेक्षा से अनाचार कहा है; परमार्थ आचार में स्थिरता होने पर वह व्यवहार-आचार छूट गया अर्थात् अनाचार छूट गया और परमार्थ-आचार में स्थिरता हुई।—ऐसा जीव मोक्ष का आराधक है। (व्यवहार के काल में भी अंतर में राग से भिन्न जितनी वीतरागपरिणति है, उतनी आराधना है।)

* चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि भी ऐसा स्वरूप जानता है। भले ही अभी स्थिरभावरूप आचार उसे प्रगट नहीं हुआ है, परंतु श्रद्धा में बराबर आ गया है कि अपने शुद्ध चैतन्य में स्थिरतारूप आचार के अतिरिक्त अन्य बाह्यभाव, वे वास्तव में अनाचार हैं—छोड़नेयोग्य हैं। जितनी वीतरागता हुई, उतना ही सम्यक्आचार है।

* अहो, मेरा आत्मा परम आनंद से भरपूर है—उसमें विकल्प के प्रवेश का अवकाश ही नहीं है।—इसप्रकार अंतर की अनुभूति में आनंद रस का झरना झरता है—उसके द्वारा मैं अपने आत्मा का अभिषेक करता हूँ।

* देखो, यह धर्मात्मा का आनंद का अभिषेक! अमृत का महा समुद्र भरा है, उसमें से पर्याय के कलश में शांतरस भर-भर के आनंद-भक्तिपूर्वक वह स्नान करता है। वाह रे वाह! धन्य तेरा आत्मा! और धन्य तेरा अवतार!

* प्रवचन में ठीक 59 वें मिनिट पर, 59 वीं जयंती के संबंध में स्वामीजी ने प्रमोद से कहा कि आज तो बहिन का जन्मदिन है। अहो! बहिन का आत्मा मंगल है। वे तो धर्मरत्न हैं; बहिनों का महा भाग्य है कि ऐसा आत्मा बहिनों में पैदा हुआ!

— इसप्रकार प्रसन्नता के वातावरण में प्रवचन समाप्त हुआ।

[गुजराती आत्मधर्म अंक नं 347, पृष्ठ 15 से 19 तक का हिन्दी अनुवाद]

अद्भुत चैतन्यसुख!

हमारा मन अब चैतन्यसुख में ही लीन है

अपने परम आनंदमय आत्मतत्त्व में जिनका चित्त लीन है, चैतन्य के महा सुख का स्वाद जो ले रहा हैं—ऐसे धर्मात्मा जानते हैं कि अहो! मेरा यह तत्त्व महा सुखनिधान चैतन्य-चिंतामणि है, उसी में हमारा चित्त लगा है, इस चैतन्यसुख के स्वाद के निकट अब कहीं किसी परभाव में हमारा चित्त नहीं लगता।

परद्रव्य का आग्रह, वह तो विग्रह का कारण है। चैतन्य को चूककर परद्रव्य में चित्त लगाने से तो राग-द्वेषरूप विग्रह होता है, उससे शरीररूपी विग्रह उत्पन्न होता है, अर्थात् परद्रव्य की भावना से तो जन्म-मरण होता है; इसलिये हमने उसे छोड़ दिया है, और अपना चित्त अपने ज्ञान-आनंदमय आत्मा के अनुभव में लगाया है। अहा, इस चैतन्य-अमृत के सामने अन्य सबका स्वाद छूट जाये—इसमें क्या आश्चर्य! जिसप्रकार अमृत का भोजन करनेवाले देवों का मन दूसरे तुच्छ भोजन में नहीं लगता, उसीप्रकार देव जैसा सम्यग्दृष्टि जीव अपने अतीन्द्रिय चैतन्यसुख का स्वाद लेनेवाला है, वह कहता है कि अहा! ऐसे चैतन्य-चिंतामणि सुख को छोड़कर परभावरूपी विष में अब हमारा चित्त नहीं लगता—इसमें क्या आश्चर्य है? धर्मी के लिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, धर्मी तो सहजरूप में परभाव से भिन्न होता हुआ चैतन्य के सुख का अनुभव करता है। उस धर्मी की चेतना परभाव से भिन्न की भिन्न रहती है।

अरे, ऐसे चैतन्य के वीतरागी सुख के निकट पुण्य को भी छोड़ना, वह कोई बड़ी बात नहीं है। अहो, आत्मा के आनंद के निकट शुभराग का, पुण्य का या बाह्य विषयों का क्या मूल्य है? हमारा चित्त अपनी स्वानुभूति में रम रहा है। अब जगत की कोई वस्तु हमें नहीं भरमा सकती—नहीं ललचा सकती। चैतन्यसुख का अत्यंत मधुर स्वाद जिसने चख लिया है, ऐसा धर्मी जीव, जब स्त्री-पुत्र-माता-पिता-भाई-बहिन-शरीर-लक्ष्मी, इन सबका मोह छोड़कर

अतीन्द्रिय आनंद की साधना के लिये जाता है, तब माता-पिता आदि से कहता है कि हे माता! अपने चैतन्यानंद के अतिरिक्त इस संसार में कहीं भी मेरा मन प्रसन्न नहीं होता, कहीं मेरा चित्त नहीं लगता... दीक्षा ग्रहण करके अब मैं अपने चैतन्य के आनंद में ही रमण करना चाहता हूँ; इसलिये हे माता! मुझे आज्ञा दो! तब माता आदि भी वैराग्य से कहते हैं कि—धन्य है बेटा! तू जिस मार्ग पर जाता है, वह मार्ग प्रशंसनीय है, हमें भी उसी मार्ग पर आना है।

वाह रे वाह! देखो तो सही, धर्मी के अंतर की दशा! अरे, इस चैतन्य के सहज सुख का स्वाद लेने के बाद संसार-दु:ख की अब कौन इच्छा करेगा? स्वभाव की शांति की शीतलता का अनुभव कर लेने पर परभावरूपी अग्नि की इच्छा कौन करेगा? अरे जीवो! आत्मा के ऐसे सुख की प्रतीति करो... उल्लासपूर्वक ऐसे अतीन्द्रिय चैतन्यसुख का स्वीकार करो! ऐसे मोक्षसुख की श्रद्धा करेगा, उसके भव-भ्रमण का अंत आ जायेगा।

आत्मा के अनुभव में होनेवाला यह चैतन्यसुख अचिंत्य है—जिसमें राग-द्वेषरूप कोई द्वंद्व नहीं, क्लेश नहीं, बाह्य उपद्रव नहीं—ऐसा वीतरागी निरुपद्रव सुख अनुपम है। चैतन्यसुख को किसकी उपमा दी जाये? जो आत्मा स्वयं सुखरूप हुआ, उसे कौन उपद्रव कर सकता है? अहा, शरीर में बिच्छू काटे या शेर खा जाये, तथापि चैतन्य के जिस सुख में कोई उपद्रव नहीं होता, बाधा नहीं आती-उस सुख की क्या बात! सम्यग्दृष्टि आठ वर्ष की बालिका को भी ऐसे चैतन्यसुख के वेदनपूर्वक उसकी धुन चढ़ जाती है... वह युवती हो, विवाह आदि हो, तथापि चैतन्य की प्रतीति एवं चैतन्यसुख की धारा उसे नहीं छूटती। वाह, बहिन! धन्य तेरी दशा! सिद्ध समान सुख का स्वाद तूने अपने में चख लिया है! आत्मा का स्वभाव ऐसे अनुपम सुखमय है और उसकी अनुभूति होने पर पर्याय भी ऐसे अनुपम सुखमय हो गई है। ऐसे सुख के लिये अंतर्मुख होना बतलाये, वही सम्यक्त्व की भाषा है, बाह्य में कहीं सुख बतलाये या किसी बहिर्मुख भाव में सुख कहे तो वह मिथ्या-भाषा है।

शरीर से भिन्न चैतन्य के आश्रय से तो अशरीरी सिद्धपद होता है और परद्रव्य के आग्रह से तो विग्रह (राग-द्वेष और शरीर को विग्रह कहा जाता है वह) उत्पन्न होता है। हमारा चित्त चैतन्य में लीन है, हमने सुख का वीतरागी अमृत पिया है, उस सुख के समक्ष शुभराग की वृत्ति भी दु:ख और विषरूप प्रतीति होती है, उसमें हमारी परिणति कभी तन्मय नहीं होती।

चैतन्यसुख में जो परिणति तन्मय हुई, वह परिणति अब दु:ख में कैसे तन्मय होगी ? अहो जीवो ! सुख के महा समुद्र ऐसे आत्मा की भावना करो... स्वानुभूति में उसके अतीन्द्रिय सुख का स्वाद लो ! मोक्षसुख का साक्षात्कार तुम्हें अपने में होगा।

[भाद्रपद शुक्ला 8, नियमसार कलश 130 के प्रवचन से]

[आत्मधर्म गुजराती, अंक 347, पृष्ठ 10-11 का हिन्दी अनुवाद]

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)—परमोपकारी पूज्य कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रतिदिन सवेरे नियमसारजी तथा दोपहर को समयसारजी शास्त्र पर प्रवचन होते हैं। स्वामीजी का स्वास्थ्य बिलकुल अच्छा है। इस वर्ष बाहरगाम से हिन्दी भाषी मेहमानों की संख्या अधिक थी। युवक वर्ग में जैनधर्म समझने की अपूर्व जिज्ञासा जागृति हुई है। उनकी संख्या बढ़ रही है। वीतराग विज्ञान पाठशाला खोलने और चालू रखने का प्रयत्न चलता है।

पर्यूषण पर्व समाचार

इस वर्ष 68स्थानों से विद्वानों को भेजने के लिये प्रार्थना-पत्र प्राप्त हुए। उनमें से निम्नलिखित स्थानों पर 42 प्रवचनकार भेजे गये।

1. कलकत्ता-श्री खेमचंदभाई, सोनगढ़; 2. ललितपुर-श्री बाबूभाई, फतेपुर; 3. बड़ौत-श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री, जयपुर; 4. अशोकनगर-श्री हिम्मतलालभाई, बम्बई; 5. बम्बई-श्री लालचंदभाई, राजकोट; 6. घाटकोपर (बम्बई)-चिमनलाल ठा. मोदी, बम्बई; 7. छिंदवाड़ा-श्री कपूरचंदजी, केसली (सागर); 8. अहमदाबाद-श्री डाह्याभाई महेता जज; 9. लोहरदा-ब्रह्मचारी झमकलालजी, सोनगढ़; 10. रतलाम-श्री सुजानमलजी मोदी; 11. जावरा-श्री सुजानमलजी सोनगढ़ तथा श्री जेठमलजी 'जैनबंधु';

12. गोहाटी(आसाम)–श्री ज्ञानचंदजी, विदिशा; 13. ग्वालियर–श्री गोविंददासजी, खड़ेरी; 14. महिदपुर–श्री लखमीचंदजी, द्रौणगिरि; 15. जबलपुर–श्री उत्तमचंदजी सिवनीवाले तथा श्री नेमीचंदजी रखियालवाले; 16. आगरा–श्री दीपचंदजी, उज्जैन तथा श्री मधुकरजी, मलकापुरवाले; 17. 'मौ' (भिंड–म.प्र.) श्री बाबूलालजी; 18. जयपुर–श्री पंडित धन्नालालजी, ग्वालियर; 19. कोटा–पंडित श्री रतनचंदजी शास्त्री, विदिशा; 20. इटावा–ब्रह्मचारी श्री रमेशचन्दजी, सोनगढ़; 21. मलाड–श्री प्राणलालभाई (दादर); 22. आरौन (म.प्र.)–श्री नाथालालभाई, दाहोद; 23. शिवपुरी–श्री धर्मचंदजी, गुना; 24. गुना–श्री नाथालालभाई, दाहोद; 25. राघौगढ़–श्री चन्दूलालभाई, फतेपुरवाले; 26. लींमड़ी–श्री सुमनभाई सेठ, बम्बई; 27. मुंगावली–श्री घासीलालजी, कोटा; 28. कुरावड़–श्री धर्मचंदजी, अशोकनगर; 29. भिंड–श्री चिमनलाल ताराचंद, कामदार; 30. बरायठा–श्री हीरालालजी; 31. बजरिया (बीना)–श्री मांगीलालजी, गुनावाले; 32. बोटाद–श्री शांतिलाल रेवाशंकर, राजकोट; 33. खंडवा–श्री मणिभाई मुन्नाईवाले; 34. करेली–श्री प्रकाशचंदजी पांडया, इंदौर; 35. पीपराई (गुना)–श्री पन्नालालजी, करेलीवाले; 36. बड़वाहा–श्री मक्खनलालजी, 'मौ' (भिंड); 37. शहपुरा–पंडित ताराचंदजी, सागर; 38. सागर–श्री नेमीचंदजी पाटनी, आगरा; 39. खुरई (म.प्र.)–श्री अभयकुमारजी, रांझी (जबलपुर); 40. उज्जैन–श्री विमलचंदजी; 41. भोगाँव–ब्रह्मचारी पंडित श्री हेमराजजी, शिहोरवाले; 42. सिकन्दराबाद (हैदराबाद दक्षिण)–श्री जेठालालभाई, मोरबी।

दसलक्षणपर्व के अवसर पर धर्म प्रभावना के समाचार

इटावा (उ.प्र.)—ब्रह्मचारी पंडित श्री रमेशचंदजी (सोनगढ़) के पधारने से समाज में धर्मप्रभावना विशेष हुई। उन्होंने पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों के टेपरील सुनवाई। साथ ही कक्षा की पढ़ाई और प्रवचनों के माध्यम से सारा जैन–जैनेतर समाज को तत्त्वज्ञान का लाभ दिया, प्रतिदिन पाँच घंटे का कार्यक्रम चलता था।

आरौन (म.प्र.)—श्री नाथालालभाई दाहोद निवासी पधारे थे। आपके द्वारा प्रतिदिन पाँच घंटे का धार्मिक कार्यक्रम द्वारा समाज ने बहुत लाभ लिया, उपस्थिति संतोषजनक थी।

खंडवा (म.प्र.)—मुन्नाई निवासी श्री मणिभाई द्वारा 12 दिन तक प्रतिदिन 4.00 घंटे

का कार्यक्रम चला आपके प्रवचन द्वारा वीतराग विज्ञान पूरित तत्त्वामृत सुनकर समाज में धर्मामृत का वातावरण छा गया था।

सागर (म.प्र.)—श्री दिगम्बर जैन समाज के आमंत्रण पर एवं श्रीमान सेठ भगवानदासजी के विशेष अनुरोध से श्री टोडरमल स्मारक भवन ट्रस्ट जयपुर के मंत्री श्री नेमीचंद्रजी पाटनी पधारे। नगर के विभिन्न मंदिरों में प्रतिदिन 3 घंटे के प्रवचनों का कार्यक्रम एवं तत्त्वचर्चा, शंका-समाधान आदि का कार्यक्रम चलता था, उपस्थिति अत्यधिक होती थी। विशेष में आपकी प्रेरणा से 'आत्मधर्म' आध्यात्मिक मासिक पत्र के 44 नये ग्राहक बने और तीन आजीवन सदस्य बने 150 से अधिक व्यक्तियों ने प्रतिदिन शास्त्रसभा चालू करने के लिये हस्ताक्षर किये एवं श्री कपूरचंदजी भाईजी ने स्वयं प्रवचन करने का स्वीकार किया। श्री दिगम्बर जैन भातृसंघ ने सागरनगर के अतिरिक्त आसपास के गाँवों में 10 स्थानों पर वीतराग विज्ञान पाठशाला खोलने का संकल्प किया है। श्री गोपालगंज-सागर की वीतराग विज्ञान पाठशाला का वार्षिक उत्सव हुआ, उसमें श्री पाटनीजी के द्वारा संबोधन के पश्चात् प्रमाणपत्र तथा पारितोष वितरण हुआ। अंतिम दिन दिगंबर जैन समाज सागर व दिगंबर जैन तारण समाज की ओर से पृथक्-पृथक् सन्मान-पत्र दिये गये एवं पूज्य स्वामीजी के प्रति विनम्र श्रद्धा व्यक्त करते हुए श्री पाटनीजी का अभार माना।

जबलपुर (म.प्र.)—पंडित श्री नेमीचंदजी रखियाल तथा शिवनी निवासी श्री पंडित उत्तमचंदजी पधारे। दोनों विद्वानों के प्रभावक प्रवचन नगर के विभिन्न स्थानों पर होते थे। और जनता बहुत ही उत्साहपूर्वक लाभ लेती थी—नगर के आसपास के ग्रामों में जैसे शहपुर-रांझी, पनागर, बरगी आदि में भी आपके प्रवचनों के कार्यक्रम रखे गये थे, उससे समाज को अत्याधिक लाभ मिला। श्री नेमीचंदजी ने तो निर्भीकता के साथ अपनी स्पष्टवादिता के अनुरूप अपना प्रभाव समाज पर छोड़ा, लेकिन 23 वर्षीय उदीयमान नवयुवक विद्वान श्री उत्तमचंदजी ने भी अपनी तार्किक शैली एवं गहरे स्वाध्याय की छाप-श्रोतागणों पर विशेषकर नवयुवकों पर छोड़ी तथा समाज को शिक्षण शिविर लगाने, प्रतिदिन स्वाध्याय करने और वीतराग विज्ञान पाठशालाएँ खोलने की प्रेरणा दी। वाद्रा की समाज के आग्रहवश तारीख 15-16 को आप दोनों विद्वान ललितपुर होते हुए अन्यत्र आमंत्रित स्थान पर पधारे। लोकप्रिय आध्यात्मिक

प्रवक्ता श्री बाबूभाईजी (फतेपुर) भी पधारे उनके अपूर्व मार्मिक एवं सारगर्भित प्रवचनों से समाज में विशेष जागृति हुई।

जयपुर (राज.)—पंडित श्री धन्नालालजी (लश्कर निवासी) पधारे। आपके द्वारा जनता को बहुत धर्मलाभ हुआ। प्रतिदिन छह घंटे का धार्मिक कार्यक्रम चालू रहा, खूब भीड़ रहती थी। बाहर से भी श्रोतागण सुनने के लिये आते थे, अंत में समाज की ओर से सन्मान-पत्र दिया गया।

गौहाटी (आसाम)—श्री नेमीचंदजी पांडया के विशेष अनुरोध से मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल के प्रचार मंत्री 'वाणीभूषण' पंडित श्री ज्ञानचंदजी (विदिशा) तारीख 11-7-72 को पधारे। प्रतिदिन तीन घंटे का कार्यक्रम होता था, आपकी साइनबोर्ड के ऊपर लिखकर समझाने की शैली से समाज बहुत प्रभावित हुई थी। अत: प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या में वृद्धि होती गई। आधुनिक शिक्षित युवान वर्ग विशेष आकर्षित हुआ। अंतिम दिन समाज की ओर से सन्मान-पत्र दिया गया।

बड़ौत (उ.प्र.)—दिगंबर जैन समाज के विशेष आमंत्रण पर एवं श्री पंडित शिखरचंदजी के विशेष प्रयत्नों से टोडरमल स्मारक भवन जयपुर के संयुक्त मंत्री आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित हुकमचंदजी शास्त्री न्यायतीर्थ एम.ए. पधारे, उनके प्रवचन दिन में तीन बार दिगंबर जैन अतिथिभवन में हमेशा 4-5 हजार श्रोतागणों की उपस्थिति में होते थे। उनकी सरल आकर्षक शैली एवं अपूर्वतत्त्व प्रतिपादनमय रोचकता से सारा समाज अत्याधिक प्रभावित हुआ। समाज ने ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर लगाने का भी आग्रह किया। पंडितश्री की प्रेरणा से दिगम्बर जैन इंटर कालेज, जिसमें 1800 छात्र अध्ययन करते हैं, वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम चालू किया है। यहाँ वीतराग विज्ञान पाठशाला में मास्टर श्री सुमतिप्रकाशजी बिना पारिश्रमिक के अध्यापन करते हैं, उसका वार्षिक उत्सव हुआ जिसमें छात्रों ने बालबोध पाठमालाओं में से संवाद किये जिसका समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अंत में समस्त दिगम्बर जैन समाज की ओर से श्री पंडितजी को सन्मात्रपत्र दिया गया उसमें स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट सोनगढ़, श्री टोडरमल स्मारक भवन एवं उ.प्र. मुमुक्षु मंडल का भी आभार प्रगट किया गया।

रतलाम (म.प्र.)—सोनगढ़ से श्री सुजानमलजी मोदी तथा नारायणगढ़ से कविवर श्री जेठमलजी पधारे थे। आप दोनों के सुंदर धार्मिक कार्यक्रम हमेशा पाँच घंटे तक हुए। समस्त दिगम्बर जैन समाज ने बहुत लाभ लिया। पंडितजी को निमंत्रण आने से जावरा, मंदसौर, नारायणगढ़ होकर लोहारदा जा रहे हैं।

महिदपुर—पंडित लक्ष्मीचंदजी तथा श्री शांतिलालजी सोगानी द्वारा शास्त्र प्रवचनादि चार घंटे के कार्यक्रम में जैन-अजैन समाज ने बहुत लाभ लिया। यहाँ पर जैन समाज हर साल अपना समस्त कारोबार 10 दिन तक बंद रखता है।

तलोद स्टेशन (गुज.)—पंडित श्री सुशीलकुमारजी द्वारा धार्मिक शिक्षण कक्षा उपरांत प्रतिदिन 5 घंटा धार्मिक कार्यक्रम का समाज ने बहुत उत्साह सहित लाभ लिया। तारीख 24-9-71 को वीतराग विज्ञान परीक्षा बोर्ड से उत्तीर्ण 170 छात्र-छात्राओं को पारीतोषिक एवं प्रमाण-पत्र आपके द्वारा दिये गये, तथा अंतिम दिन पंडितश्री को सन्मान-पत्र दिया गया।

बीना-बजरिया (म.प्र.)—गुना निवासी श्री मांगीलालजी द्वारा यहाँ आध्यात्मिक प्रवचन 11 दिन तक हुए। समाज ने बहुत लाभ लिया प्रतिदिन 5 घंटे प्रवचन होते थे। ललितपुर से लौटते समय तारीख 23-9-72 फतेपुर निवासी श्री बाबूभाई पधारे आपके प्रवचन में अत्याधिक संख्या में जैन-जैनेतर समाज ने अपूर्व लाभ लिया, बीना-इटावा, खुरई, बामोरा, मुंगावली, खिमलासा आदि से भी श्रवणार्थि आये अत्याधिक भीड़ रही, आपके द्वारा पाठशाला के छात्रों को प्रमाणपत्र एवं पुरस्कार वितरण कराया गया। पश्चात् बालकों का शिक्षाप्रद ड्रामा हुआ। अशोकनगर जाते और आते समय बम्बई निवासी पंडित श्री हिम्मतभाई के आध्यात्मिक प्रवचनों का बीना-इटावा ने भी लाभ लिया।

शिवपुरी (म.प्र.)—अशोकनगर से पंडित धर्मचंदजी पधारे 10 दिन तक हमेशा पांच घंटा धार्मिक प्रवनादि का कार्यक्रम दिया। यहाँ की समाज ने उत्साहपूर्वक लाभ लिया।

सहारनपुर (उ.प्र.)—इस अवसर पर श्री जिनेश्वरप्रसादजी के अनुरोधवश कवि और मनोज्ञ विद्वान श्री युगलकिशोरजी एम.ए. साहित्यरत्न कोटा पधारे। आपने हमेशा चार घंटे का कार्यक्रम अनुपम शैली से दिया, चारों अनुयोगों से सुसंगत सांसारिक रागाग्नि से बचने के

अमोघ उपाय प्रस्तुत किये। समाज ने अपनी विद्वता का असाधारण आकर्षण एवं तर्कपूर्ण विवेचन से अपनी अनेक भ्रमणाओं को दूर किया। मुमुक्षु मंडल तथा अग्रणीओं द्वारा 'वाणीभूषण' की पदवी, सन्मानपत्र तथा भावभीनी विदाई दी।

सोलापुर (महाराष्ट्र)—श्री पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री (कटनी) द्वारा दस दिन तक प्रतिदिन पाँच घंटे का कार्यक्रम रहा। समाज ने अपूर्व धर्मलाभ लिया। पंडितजी ने अनेकांतवाद का प्रयोजन, सर्वज्ञ कथित छहों द्रव्य की स्वतंत्रता, स्वतत्त्व की महिमा बड़े मार्मिक ढंग से समझाई-आपने पूज्य कानजीस्वामी द्वारा समाज में अपूर्व धर्म प्रभावना, तत्त्वों का यथार्थ प्रतिपादन तथा पवित्र जैनधर्म का प्रचार हो रहा है—उसकी प्रशंसा की एवं सोनगढ़ की धर्मवत्सलता एवं साहित्य-प्रकाशन आदि कार्यों की सराहना की।

कोटा (राज.)—पंडित श्री रतनचंद्रजी शास्त्री न्यायतीर्थ (विदिशा) पधारे। पंडितजी के प्रयास से आत्मधर्म मासिकपत्र के 7 ग्राहक नये बने हैं। पंडितजी के प्रवचन बड़े ही सुंदर होते थे एवं शंका-समाधान आदि का कार्यक्रम प्रतिदिन 5.00 घंटा विभिन्न स्थानों पर चलता था। पंडितजी साहब की धर्मपत्नी श्री कमलाबाईजी महिला समाज में कक्षा चलाती थी। समाज ने बहुत उत्साहपूर्वक लाभ लिया। अनेक भ्रांत धारणाओं का निराकरण हुआ। अंत में, तारीख 22-9-72 को विशाल रथयात्रा निकाली गई।

ग्वालियर तथा लश्कर (म.प्र.)—सोनगढ़ से पंडित गोविंददासजी खड़ेरीवाले पधारे, 10 दिन तक प्रवचन का आयोजन तेरापंथी दिगम्बर जैन धर्मशाला में लश्कर जैन समाज द्वारा किया गया। हमेशा रात्रि को विशेष आयोजन होने से व अनेक विद्वानों के एक ही स्थान पर प्रवचन होते थे, जिसमें सब लोग एक जगह एकत्रित होते थे। श्री गोविंददासजी का प्रतिदिन 4.00 घंटा का कार्यक्रम रहा। समाज ने उत्साहपूर्वक बहुत लाभ लिया।

भोपाल (म.प्र.)—यहाँ दसलक्षण पर्व पर हरसाल की तरह 4 घंटे का कार्यक्रम रहा। वीतराग विज्ञान पाठशाला द्वारा 'सती चेलना' धार्मिक ड्रामा किया गया, समाज ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। ललितपुर जाते और वापिस लौटते समय फतेपुर निवासी श्री पंडित बाबूभाई के प्रवचनों का भोपाल एवं एच.इ.एल. की समाज ने लाभ लिया तथा सागर से लौटते समय श्री नेमीचंदजी पाटनी के प्रवचनों का लाभ लिया।

जावरा (म.प्र.)—सोनगढ़ के विद्वान श्री सुजानमलजी तथा श्री जेठमलजी नारायणगढ़वाले पधारे थे। तारीख 25 से 28 तक हमेशा तीन घंटे तक समयसार, नियमसार शास्त्र पर प्रवचन चलता था। श्रोतागण की उपस्थिति अच्छी रही।

आष्टा (म.प्र.)—स्वाध्यायमंडल के महामंत्री पंडित पारसदासजी द्वारा सूत्रजी, छहढाला की तत्त्वचर्चा पर सुंदर प्रवचन होते थे। अंत में विशाल रथयात्रा तथा नवयुवकों द्वारा भगवान महावीरजी की सुंदर झांकियों का प्रदर्शन किया गया।

राधौगढ़ (म.प्र.)—फतेपुर निवासी श्री चन्दुभाई महेता पधारे थे। 15 दिन तक तीन घंटे तक आध्यात्मिक प्रवचन एवं कक्षा, शंका-समाधानादि चलाये। जिससे जैन समाज पूर्णरूप से लाभान्वित हुआ। स्थानिक समाज स्वाध्याय भवन बनवा रही है, उसके लिये आपकी प्रेरणा से दान की घोषणा हुई। अंतिम दिन विमान यात्रा का जुलूस निकाला गया।

बडवाह (म.प्र.)—'मौ' के श्री मक्खनलालजी के यहाँ पधारने से दस दिन के धार्मिक कार्यक्रमों में चार चाँद लग गये। प्रतिदिन 5 घंटे का कार्यक्रम में शिक्षण कक्षायें, प्रवचन, शंका-समाधानादि हुए। समाज ने अति उत्साहपूर्वक सभी कार्यक्रमों में भाग लिया, धूपदशमी, अनंत चतुर्दशी एवं क्षमावाणी के दिन रथयात्रा निकाली गई।

आगरा (उ.प्र.)—श्री पद्मचंदजी सर्राफ के खास अनुरोध से पंडित श्री दीपचंदजी (उज्जैन) और श्री पंडित मधुकरजी (मलकापुर) यहाँ पधारे। 15 दिन तक विभिन्न स्थानों में प्रतिदिन चार-चार प्रवचन होते थे तथा श्री मधुकरजी द्वारा भावपूर्ण पूजन भक्ति के कार्यक्रम होते थे, अपूर्व ढंग से शंका-समाधान होने से सोनगढ़ संबंधी अनंक भ्रांत धारणाओं का निराकरण किया गया। दोनों विद्वान को कई जगह से सन्मानपत्र दिये गये। यहाँ की जनता ने बहुत लाभ लिया, तथा आभार मानते हुए कहा कि सोनगढ़ के इन विद्वानों को धन्य है कि नि:स्वार्थ भावना से जिनवाणी की सेवा कर रहे हैं। पश्चात् श्री बाबूभाई (फतेपुरवाले) तारीख 29 को 2 दिन के लिये आगरा पधारे, उनके भी प्रवचन हुए तथा श्री पंडित ज्ञानचंदजी 'वाणीभूषण' (विदिशावाले) गोहाटी से लौटते हुए पधारे, उनके भी दो दिन बड़े सुंदर प्रवचनों का कार्यक्रम रहा। इसप्रकार आगरानगर में अच्छी धर्मप्रभावना हुई।

बरायठा (म.प्र.)—पंडित हीरालालजी (खड़ेरी) पधारे, विशेष धर्मप्रभावना हुई। दस दिन तक 4 घंटे के प्रवचनादि कार्यक्रम द्वारा उत्तम ढंग से समाज ने लाभ लिया।

लोहरदा—ब्रह्मचारी पंडित श्री झमकलालजी (सोनगढ़) पधारे। अतीव शांतिमय ज्ञान-वैराग्यमय प्रवचनों के द्वारा हमेशा चार घंटे का धार्मिक कार्यक्रम चलता था, सभी जैनसमाज ने उत्साहपूर्वक लाभ लिया।

उज्जैन (म.प्र.)—यहाँ दसलक्षण पर्व के अवसर पर श्री विमलचंदजी झांझरीजी द्वारा क्षीरसागर दिगम्बर जिनमंदिर स्वाध्यायभवन में हमेशा पाँच घंटे का धार्मिक कार्यक्रम चलता था। समाज ने अच्छी संख्या में धर्म लाभ लिया।

सिमला—पंडित श्री राजकिशोरजी जैन (बड़ौत) पधारे थे। दसलक्षणपर्व पर हमेशा तीन घंटे का प्रवचन का सुंदरतम कार्यक्रम का समाज ने 4 दिन तक लाभ लिया। प्रकृतिवश घर जाना पड़ा, आप जिनवाणी के मंजे हुए वक्ता है।

अशोकनगर (म.प्र.)—श्री पंडित हिम्मतलाल छोटालाल शाह, बम्बईवाले पधारे थे। विस्तृत समाचार अगले अंक तारीख 25-11-72 में दिये जायेंगे।

मौ (भिंड)—तारीख 14-10-72 से 26-10-72 तक के लिये वीतराग विज्ञान शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया है, जिसमें ब्रह्मचारी श्री हेमराजजी, ब्रह्मचारी श्री धन्नालालजी, पंडित श्री चिमनभाई, ब्रह्मचारी श्री रमेशचंदजी पधारे हैं-समापन समारोह पर श्री पद्मचंदजी सर्राफ एवं नेमीचंदजी पाटनी पधारेंगे।

आवश्यक सूचना—समाज के सर्वमान्य नेता श्रीमान् साहू शांतिप्रसादजी जैन की ओर से श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर द्वारा प्रकाशित बालबोध पाठमाला भाग-1, 2, 3, तथा वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग-1, 2, 3 के सेट समस्त जैन शिक्षण संस्थाओं को भेजे गये हैं, साथ में नैतिक शिक्षा (धर्मशिक्षा) के पाठ्यक्रम में चालू करने के संबंध में उनका प्रेरणापत्र भी है। जिन्हें प्राप्त न हुआ हो, वे पत्र द्वारा हमसे मंगा लें।

मंत्री—श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, पोस्ट-जयपुर-4 (राज.)

सूचना—सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित जैन बालपोथी भाग 1 तथा भाग 2 को पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया गया है। संबंधित संस्थाएँ नोट कर लें एवं प्रवेशफार्म में भरने का ध्यान रखें।

मंत्री—वीतराग विज्ञान परीक्षा बोड-जयपुर

प्रांतिज (गुज.)—तारीख 5-10-72 से तारीख 16-10-72 तक गुजरात दिगम्बर

जैन धर्म शिक्षण समिति द्वारा छठवाँ शिविर का विशाल आयोजन किया गया है। उनका उद्घाटन श्री नेमीचंदजी पाटनी की अध्यक्षता में श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री एम.ए. के हस्त से हुआ। आमंत्रित विद्वानों में श्री पंडित हुकमचदजी (जयपुर), पंडित बाबूभाई (फतेपुर), श्री पंडित नेमीचंद (रखियाल), श्री ब्रह्मचारी पंडित धन्यकुमार बेलोकर (अंतरीक्षजी पार्श्वनाथ-शिरपुरवाले), श्री पंडित जतीशचंदजी (सनावद), पंडित गोविंददासजी (खड़ेरी) आदि पधारे हैं। नित्य 8 घंटे के कार्यक्रम सहित शिविर अपूर्व उत्साह एवं सफलतापूर्वक चल रहा है।

प्रांतिज—श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड गुजरात शाखा की जनरल सभा तारीख 15-9-72 को प्रांतीज में पंडित हुकमचंदजी शास्त्री सं. मंत्री परीक्षाबोर्ड जयपुर के सान्निध्य में हो रही है। परीक्षाबोर्ड की गुजरात शाखा के मंत्री की ओर से निम्नलिखित परिपत्र गुजरात प्रांत की समाज को भेजकर अनुरोध किया गया है कि फतेपुर जिनपंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के समय पास किये गये प्रस्ताव को कार्यरूप परिणत किया जावें।

प्रस्ताव—'गुजरात तथा गुजरात के बाहर जहाँ गुजराती माध्यम है, वहाँ बालकों को वीतराग विज्ञान के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने के लिये तथा तत्त्वज्ञान का अपूर्व धार्मिक संस्कारों का सिंचन करने के लिये भारतभर में वीतराग विज्ञान पाठशालाओं की स्थापना की जावे और चालू पाठशालाओं में वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड जयपुर का अभ्यास क्रम चालू किया जावे।'

उपरोक्त परीक्षाएँ जनवरी तथा जून में ली जाती हैं-आपके यहाँ से कितने छात्र किस पुस्तक में बैठेंगे। प्रवेशपत्र भेजन की अंतिम तिथि 31-10-72 तथा 30-4-73 है।

गुजराती माध्यम के प्रवेशपत्र मंगाने तथा पत्र व्यवहार का पता निम्नलिखित है।

संयुक्त मंत्री—श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड गुजराती शाखा
खड़िया दिगम्बर जिनमंदिर, अहमदाबाद-1

—ब्रह्मचारी गुलाबचंदजी जैन

आवश्यक सूचना—व्यवस्था संबंधी परिवर्तन के कारण प्रतिमास की 15वीं तारीख को पोस्ट होनेवाला आपका प्रिय मासिकपत्र 'आत्मधर्म' अगले महीने से 25वीं तारीख को पोस्ट किया जायेगा। —व्यवस्थापक : आत्मधर्म

[टाइटिल पृष्ट 2 का शेषांश]

महोत्सव का मुख्य दिवस भाद्रपद कृष्णा दूज : आज प्रभात से आनंदभेरी के साथ जन्मबधाई के मंगल-गीतों से आश्रम का वायु-मंडल गूँज उठा था। पूज्य स्वामीजी के मंगल-प्रवचन से पूर्व ब्रह्मचारी बहिनों ने ''मंगलकारी 'तेज' दुलारी'' गीत गाकर अपनी जीवनाधार पूज्य बहिनश्री के प्रति श्रद्धा-भक्ति व्यक्त किये थे। प्रवचन के अन्त में पूज्य गुरुदेव ने स्वयं ''अहो! चंपाबहिन का आत्मा तो मंगलमय आत्मा है; हिन्दुस्तान में बहिन जैसा अद्वितीय स्त्रियों में कोई नहीं है; अद्वितीय रत्न है; महिलाओं का भाग्य है कि इस काल बहिन जैसे आत्मा का स्त्री-देह में आगमन हुआ है,'' इत्यादि वचनों द्वारा भावार्द्र चित्त से प्रसन्नता व्यक्त की थी। प्रवचन के पश्चात् श्रद्धांजलि-समर्पण-समारोह में अध्यक्ष श्री नवनीतलालभाई जवेरी, श्री खीमचंदभाई शेठ, श्री बाबूभाई महेता फतेपुरवाले तथा श्री चिमनलालभाई मोदी ने भावभीनी श्रद्धांजलि समर्पित की थी। तत्पश्चात् जन्मजयंती के हर्षोपलक्ष में '59' के एकम की 22000) से अधिक की रकम में श्री परमागम मंदिर के लिये घोषित की गई थीं।

इस उत्सव में पूर्णिता के दिन श्री हेमकुँवरबहिन कामाणी की ओर से तथा पूज्य बहिनश्री के मंगल जन्म-दिवस पर श्री ब्रजलाल भाईलाल शाह सूरतवालों की ओर से—इसप्रकार दो विशाल प्रीतिभोज बड़े उत्साहपूर्वक दिये गये थे। दूज के दिन गुरुदेव के प्रवचन के बाद सबको श्रीफल बाँटे गये थे। तीनों दिन सोनगढ़ मुमुक्षु मंडल के प्रत्येक घर में स्टेनलेस स्टील के बर्तन बाँटे गये थे।

जन्म-जयंती में मंगल दिन पूज्य बहिनश्री-बहिन के घर कल्याणकारी पूज्य गुरुदेव के आहारदान का मंगल-प्रसंग तथा उस अवसर पर पूज्य बहिनश्री-बहिन की गुरुभक्ति उपस्थित जनों को प्रमुदित करती थी। तत्पश्चात् आश्रम के स्वाध्याय-भवन में समस्त मुमुक्षु भाई-बहिन पूज्य बहिनश्री के दर्शन करने आये थे।

रात्रि को महिला-मुमुक्षु समाज में पूज्य बहिनश्री का अध्यात्मरसयुक्त प्रवचन हुआ था। अंत में ब्रह्मचारी बहिनों आदि द्वारा गाये गये प्रसंगोचित मांगलिक भक्तिगीतों सहित महोत्सव की समाप्ति हुई।

—इसप्रकार आत्मार्थी जनों को आह्लादकारी ऐसा यह आनंद-मंगलमय उत्सव सुवर्णपुरी में जय-जयकारपूर्वक मनाया गया।

धन्य जिनवाणी! धन्य वीतरागी मुनिवर!

[मुनि भगवंतों का दिया हुआ अमूल्य वीतरागी उत्तराधिकार]

स्वामीजी दोपहर के समय करीब तीन घंटे तक एकांत में शास्त्र-स्वाध्याय-मनन करते हैं। पिछले महीने स्वामीजी ने 'षट्खंडागम' महाशास्त्र के 16 भागों का विहंगावलोकन किया। अहा! उसमें तो समुद्र भरा है! उसमें से मुख्य-मुख्य विषयों का अवलोकन करके प्रवचन में और चर्चा में भी स्वामीजी नये-नये न्याय बतलाते थे... साथ ही साथ उस परमागम का और उसके रचयिता वीतरागी मुनि भगवंतों का भी अत्यंत बहुमान और गुणगान करते थे। प्रवचन में जहाँ धवला का या मुनिवरों का नाम आता, वहाँ उनकी महिमा श्रोतागण कान लगाकर सुनते थे। स्वामीजी अत्यंत बहुमान से कहते थे कि अहा! षट्खंडागम में तो मुनियों ने ज्ञान का समुद्र भर दिया है! केवलज्ञानी की वाणी के साथ उसका सीधा संबंध है। केवली भगवान की वाणी के साथ संधि बिना ऐसी सूक्ष्म बात नहीं आ सकती। स्वामीजी अनेक प्रकार से षट्खंडागम जिनागम की महिमा करते और धरसेन-पुष्पदंत-भूतबलि तथा वीरसेन मुनि भगवंतों का भी खूब गुणगान करते थे—धन्य वे वीतरागी मुनिभगवंत! धन्य वह जिनवाणी! हमारा भाग्य है कि आज यह वीतरागी जिनवाणी हमारे हाथ में आ गई!

हे साधर्मी बंधुओं! तुम परम आदरपूर्वक इस जिनवाणी के दर्शन करना... स्वाध्याय करना। पच्चीस वर्ष पहले जिसके दर्शन दुर्लभ थे, वह अमूल्य वस्तु आज अपने घरों में और हाथ में आयी है। अपने पूर्वजों का यह अमूल्य वीतरागी उत्तराधिकार है—हम उसके अधिकारी हैं।

(षट्खंडागम के सारभूत विषयों का सार आत्मधर्म में देने की संपादक की भावना है)।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)